अध्याय 4

जैन काव्य में प्रशस्ति का स्वरूप

जैन काव्य एक पुनर्परिचय :-

तीसरे अध्याय के अन्तर्गत साधनात्मक काव्य के रूप में उपलब्ध अपभ्रंश भाषा की रचनाओं के तन्त्र और तत्व के प्रति पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है । इसके भी पूर्व द्वितीय अध्याय में आदिकालीन काव्य में प्रशस्ति की अनिवार्यता और सम्भावना की दिशाओं के भी निर्देश किए जा चुके हैं । ऐसी स्थिति में इस धारा की कविता में अभिव्यक्ति प्रशस्ति को उसके अनेक रूपों में स्थापित करने के लिए पहले देखना यह है कि इस काव्य की सामग्री का मूल स्त्रोत और स्वरूप क्या है ? अपभ्रंश काव्य का अब तक जो अध्ययन हुआ है उसके अनुसार जैन, सिद्ध और नाथ सम्प्रदायों की धार्मिक साधना को आधार भूत सामग्री के रूप में पुराण, रामायण अर्थात् रामकथा, कृष्णकथा, रहस्यसाधना और लोकरसयुक्त रचनाओं को ग्रहण किया गया है । स्वयम्भु, त्रिभुवन, पुष्पदन्त ने रामकथा और कृष्णकथा को लेकर पौराणिक प्रवृत्ति और परिवेश को प्रतिष्ठा प्रदान की है, तो अन्य जैन कवियों ने पौराणिक पुरुषों के चरित्र को लेकर नागकुमार चरिउ, जसहर चरिउ, करकंड चरिउ जैसे चरित प्रधान काव्यों का प्रणयन किया है । इसके साथ ही जोइन्दु, रामसिंह आदि जैनों तथा सम्पूर्ण सिद्ध कवियों ने रहस्य साधना को निरूपित किया है । इसमें शृंगार और शौर्य के लोक सामान्य विषय को सामग्री के रूप में ग्रहण किया गया है तो हेमचन्द्र के व्याकरण नियम भी निरूपित हुए हैं । नीति और सूक्ति काव्य के साथ जीवन की व्यवहार नीति को निरूपित करते हुए तत्कालीन जीवन के समूचे आयाम को उजागर कर दिया गया है ।[1]

यह भी विचारणीय है कि जैन साहित्य की रचना लोक-यश एवं लोक सम्पदा के लिए न होकर आत्म-शुद्धि, सामाजिक जागरण लोक मंगल की भावना से प्रेरित है । इस साहित्य के निर्माण में यद्यपि समकालीन राजाओं का योगदान रहा फिर भी इसकी रचना सन्तों द्वारा हुई और इसकी प्रवृत्ति सन्तमत सम्मत है । इस

1- हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग : पृष्ठ - 16

साहित्य में मात्र अभिजात्य जीवन ही व्यक्त नहीं हुआ है लोक जीवन को भी समुचित सम्मान दिया गया है । इसमें प्राचीन गौरव है, आराध्य के प्रति भक्ति-भाव है, सिद्धान्तों का निरुपण है, व्यवहार ज्ञान है, चरित्र गान है, समाज सुधार है, राष्ट्रीय जागरण है, लोक मंगल है और है विश्वजनीन भावों का अनवरत औदात्य ।[1]

शैली की दृष्टि से प्रबन्ध, मुक्तक - खण्ड काव्य, महाकाव्य, चरित, रास, दोहा, चर्यागीत, चउपई, फागु आदि का विनियोग किया गया है । अपभ्रंश में व्यक्त इस सामग्री और शैली स्वरुप में जो विविधता पाई जाती है वह वैचारिक दृष्टि से विषय, रस, संस्कृति, परम्परा में अपना एक विशिष्ट दर्शन रखती है । जैन काव्य में जैन तत्व और मत निरुपित है । जैन जिनके अनुयायियों को कहते हैं । यह वह महापुरुष है जो नर से नारायण हुआ है, उसने अपने सत्य अध्यवसाय से राग-द्वेष को जीत लिया है । वह आत्म विजयी वीर है, सर्वज्ञ है, सर्वदर्शी है । जैन तीर्थंकरों में सबसे अन्तिम भगवान महावीर (वर्धमान) एक सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, महापुरुष थे ।[2] ऐसी स्थिति में जैन अपभ्रंश काव्य में जिन परम्पराओं का विकास हुआ, उनमें इस मत की सभी मान्यताएं भगवान् जिन और उनकी शिक्षाओं से सुरभित अवश्य है । इस काव्य में जैन साधुओं की शान्तिपूर्ण प्रवृत्ति पाई जाती है । लोकाश्रय के अभाव में उसका प्रणयन असम्भव था इसलिए यह शान्तिलोक पीठिका पर प्रतिष्ठित है । यही कारण है कि इसमें रास, रासक तथा चर्यागीत चरित काव्य भी है, फागु भी है तथा शान्त का स्वर वीर और श्रृंगार में भी है ।[3] जैन हिन्दी कवियों ने स्याद्वाद दर्शन की अनुभूति से पदार्थ की गति और परिस्थिति का अनुभव कर खण्ड काव्यों में घटनानुसन्धान इतने सुन्दर ढंग से घटित किए हैं कि मानव जीवन के राग-विराग सहज ही में प्रकट हो जाते हैं । पन्चमी चरित, नागकुमार चरित, यशोधर चरित, नेमिनाथ चउपई, बाहुबलि रास, गौतम रास, कुमारपाल प्रतिबोध, जम्बू स्वामी रास, रेवन्तगिरि रास, संघपति समरा रास, अंजना सुन्दरी रास, धर्मदत्त चरित, ललितांग चरित, कृपण चरित, धन्य कुमार चरित, जम्बू चरित आदि अनेक जैन खण्ड काव्य देशी-भाषा, पुरानी हिन्दी और परवर्ती हिन्दी में विद्यमान है ।[4]

1- राजस्थान का जैन साहित्य : सम्पादक अगरचन्द नाहटा एवं डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल : पृष्ठ - 14

2- श्री कामताप्रसाद जैन : हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास : संस्करण-1 : पृ० - 1

3- हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास : संस्करण - 1 : पृष्ठ - 32

4- श्री नेमिचन्द्र शास्त्री : हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन (भाग-1) : संस्करण-1 : पृष्ठ - 53

साधनात्मक साहित्य में जैन काव्य का योगदान सबसे अधिक और प्रभावशाली है। जैन साहित्य सामाजिक घटनाओं, धारणाओं, विचारणाओं की यथार्थ अभिव्यक्ति देता रहा है। इसका महत्व वैयक्तिक सम्बन्धों के साथ सामाजिक संस्कृति की दृष्टि से भी है। इतिहास लेखन की तटस्थता जैन साहित्य में सहज सुलभ है। जैनों का साहित्य एक ऐसा दर्पण है जिसमें विविध आचार-व्यवहार, सिद्धान्त-संस्कार, रीति-नीति, वाणिज्य-व्यवसाय, धर्म-कर्म, शिल्प-कला, पर्व-उत्सव, तौर-तरीके, नियम-कानून की पवित्रता, नैतिक मर्यादा और उदार जीवन आदर्शों का पथ-दर्शन हुआ है। जैन साहित्य आत्म धर्मिता का उद्गाता होकर भी प्रयोगधर्मी रहा। ये साहित्यकार अपनी मिट्टी और जलवायु से जुड़े हुए हैं।[1] आदिकाल पर प्रकाश डालते हुए यह माना गया है कि आदिकाल की सर्वाधिक सामग्री जैनों द्वारा मिली है। इनके द्वारा प्रस्तुत ग्रंथों की संख्या 500 के लगभग है। मुख्यतः यह साहित्य दिगम्बरों द्वारा प्रस्तुत किया गया है। केवल धार्मिक कह कर इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। जैनों का सामाजिक और लोकोपकारक साहित्य भी उपलब्ध होता है। शृंगार, वीर, शान्त, कथापरक, रहस्यात्मक, योगपरक, व्याकरण, छन्द, इतिहास, मनोविनोद, दोहा आदि अनेक साहित्य और साहित्येतर विषयों से सम्बन्धित ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। रचनाएँ ग्यारहवीं से पन्द्रहवीं शती के प्रत्येक चरण का प्रतिनिधित्व करती हैं।[2] सामाजिक और लोकपरक, रहस्यात्मक और योगपरक इस जैन काव्य में तीर्थंकरी प्रवृत्तियों का ही प्राधान्य है। जैन धर्म के सबसे बड़े प्रचारक भगवान महावीर के अतिरिक्त और 23 तीर्थंकर हो चुके हैं। समस्त जैन साहित्य इन्हीं के चारों ओर चक्कर काटता है।[3] इस विशाल जैन साहित्य में तत्व चिन्तन और जीवन-शोधन पर विशेष बल दिया गया है। 'जगत, जीव और ईश्वर के स्वरूप चिन्तन से ही तत्वज्ञान की पूर्णता नहीं होती है, किन्तु इसमें जीवन शोधन की मीमांसा का अन्तर्भाव करना पड़ता है। जैन मान्यता में जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्व माने गए हैं। इनके स्वरूप का मनन चिन्तन कर आत्मकल्याणकारी तत्वों में प्रवृत्ति करना जैन-तत्वज्ञान

1- राजस्थान का जैन साहित्य : अगरचन्द नाहटा : पृष्ठ - 16

2- पुरुषोत्तम प्रसाद आसोपा : आदिकाल की भूमिका : संस्करण -- 1973 : पृष्ठ - 95

3- वही, पृष्ठ - 85

का एक पहलू है । इनमें जीव, अजीव ये दो ही मुख्य तत्व हैं । सच्चिदानन्दमय आत्मा या जीव ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि गुणों का अक्षय भण्डार है । यह अखण्ड अमूर्त्ति के पदार्थ हैं, जो न शरीर से बाहर व्याप्त है और न शरीर के किसी भाग में केन्द्रित है, किन्तु मनुष्य के समग्र शरीर में व्याप्त है ।'[1]

डा० रामसिंह तोमर ने जैन प्रबन्ध रचनाओं पर प्रकाश डालते हुए इस बात को मुक्त रूप से स्वीकार किया है कि इन कृतियों का प्रधान स्वर धार्मिक है । स्वयम्भू, पुष्पदन्त, हरिषेण, धाहिल, हरिभद्र, साधु, लक्ष्मण, यशःकीर्ति रइधू, नरसेन एवं माणिक्यराज की रचनाओं पर टीप देते हुए उन्होंने जो स्पष्ट संकेत किया है उससे इनकी कृतियों में प्रशस्ति के धार्मिक अथवा अलौकिक (दैवी) स्वरूप की संभावना के द्वार खुलते हैं ।[2]

जैन काव्य में प्रशस्ति

इस शोधप्रबन्ध के प्रथम अध्याय में ही प्रशस्ति के स्वरूप एवं भेद की विवेचना की जा चुकी है । लौकिक और अलौकिक दृष्टियों से आदिकालीन काव्य की वस्तु परम्परा के बीच प्रशस्ति की सम्भावना को साकार करने की जो पृष्ठभूमि प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय अध्याय में रची गयी है, उसको ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत प्रसंग में प्रशस्ति के विविध रूपों का निरूपण किया जाता है । जैन काव्य की प्रवृत्ति और उसके परिवेश की उपज जो काव्य, संस्कृति एवं तत्कालीन दर्शन में परिलक्षित है, धर्म एवं साधना प्रधान है । 'प्रशस्ति की रूप-रचना' और उसके संदर्भ में भी यही धार्मिकता मुख्य है । इस तथ्य का ध्यान रखते हुए जैन काव्य में उपलब्ध प्रशस्ति के विभिन्न रूपों की मीमांसा प्रारम्भ की जा रही है । इस धारा के काव्य का अनुशीलन करने से प्रशस्ति के जिन रूपों को उभरते हुए देखा गया है उनमें प्रमुख हैं - प्रणति, समाराधना एवं शरणागति भाव, स्तुति एवं वन्दना, यशगान, सम्पदा एवं वैभव - वर्णन आदि।

1- श्री नेमिचन्द्र शास्त्री : हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन (भाग-1) प्रकरण-1 : पृष्ठ- 23

2- प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य : पृष्ठ 96 - 164

प्रणति एवं शरणागति भाव :-

यह स्पष्ट किया जा चुका है कि किसी लौकिक - अलौकिक व्यक्ति एवं सत्ता को महनीय मानकर उसके समक्ष अपने या लोककल्याण के लिए प्रणति एवं शरणागत भाव से समर्पित हो उठना, आलम्बन की महिमा ही मानी जायगी । इस प्रकार की महिमा की स्वीकृति प्राय: अलौकिक सत्ता के प्रति ही देखी जाती है । अत: यह स्वर अलौकिक, धार्मिक एवं दैवी कोटि की प्रशस्ति की प्रधान एवं बलवती धारा है । प्रणति, समाराधना एवं शरणागति भाव भी यद्यपि स्तुति एवं वन्दना मूलक प्रशस्ति से भिन्न नहीं फिर भी आश्रय के उद्देश्य के विचार से स्तुति एवं शरणागति की स्थिति में अन्तर है । अत: शरणागति भाव एवं स्तुति दोनों को पृथक-पृथक रूप में देखने का प्रयास किया जायेगा ।

कविवर राज सिंह द्वारा रचित 'जिणदत्त चरित' में जिनेश्वर की चरितावली बखानते हुए कवि ने स्वयं को अधम मान कर प्रदीप्त चरित की व्याख्या करने के लिए शक्ति अर्जन के हेतु माँ शारदा की शरण ग्रहण करने की जो व्यंजना की है, उससे उसकी प्रणति भावना का भी परिचय मिलता है ।

> सेरि भुइ दुःई ध्यावहु तुडु पाइ, परसन्नी तुडु सारद माइ ।
> महु पसाउ स्वामिनि करि तेम, जिणदत्त चरितु रचउ हउ जेम ।[1]

माँ शारदा की चरण-वन्दना करते हुए कवि अपनी असमर्थता में समर्थ होकर आराध्य देवी की कृपा की याचना करते हुए उनकी शरण ग्रहण करना चाहता है ।

जैन कवियों में पुष्पदन्त एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने 'उत्तर पुराण' में कृष्ण की भक्ति-भावना बढ़ाने वाली वह प्रतिमा जो स्वयं उन्होंने महापुरुष के रूप में अपने भावमन्दिर में प्रतिष्ठित की है । इसमें कृष्ण एवं गोपियों के जिस सम्बन्ध को रागात्मक स्तर पर उतारा गया है वह भी एक प्रकार से शरणागति भाव के आश्रय की चेष्टा मानी जाएगी जो प्रशस्ति प्रपत्ति मूलक रूप को प्रतिष्ठित करती है ।

1- सम्पादक : डा0 माताप्रसाद गुप्त : जिणदत्त चरित : पृष्ठ - 7

'कृष्णेहि समानी कोइ पुत्र । संजनेउ जननि विद्रविय शत्रु ।
दुर्धर - भर - रणधुर दोउ बन्धु ।
उद्धारेय जेहिं निमलन्त बन्धु ।
भंजिवि णियरैं गजवर गईइ । सम्मननोहि पद्मावलोहि
कतिपय दिवसैं रति प्रौढ रोहिं । बोलवेउ प्रभु गोपालिन्नोहि ।'[1]

- पुष्पदन्त : उत्तर पुराण

कृष्ण के प्रताप की चर्चा करते हुए पुष्पदन्त कहते हैं कि शत्रु का दमन करने वाला कृष्ण जैसा पुत्र क्या अन्य किसी जननी ने जन्माया है ? रणवीर, दीनों का रक्षक कृष्ण ने अपने बन्धुओं का उद्धार किया तथा गज-ग्राह संघर्ष में गजोद्धार किया । इस प्रकार इन पंक्तियों में कृष्ण की शरणागत क्षमता एवं भक्त वत्सलता का ही भाव अंकित किया गया है । राहुल जी ने अपनी काव्यधारा में विवेच्य काल के जन कवियों की परम्परा में 'अज्ञात कवि या कवि वृन्द' के नाम से 'राम की स्तुति' से सम्बन्धित कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की हैं । इन पंक्तियों में राम की भक्त-वत्सलता एवं शरणागत भाव को कतिपय कथाओं के माध्यम से उजागर किया गया है । राम शरण्य हैं, आश्रयदाता हैं क्योंकि उन्होंने 'बाप की वचन का आदेश शिरसा स्वीकार करके पत्नी एवं भाई के साथ राजसुख त्याग कर वनवास को अपनाया । भक्तों को कष्ट देने वाले, सज्जनों को सताने वाले विराध, कबन्ध तथा जातिका विघटन किया, शरण में आए हुए सुग्रीव को अकंटक राज्य दिया एवं हनुमान (वानर) से मैत्री की । समुद्र लांघकर रावण को पराजित किया और जन-जाति को निर्भयदान किया । वृन्द कवि कहते हैं -

'बापह उक्ति सिरे जिनि लिज्जिउ ।
त्यागिय राज्य वनंत चलेउ ॥
सोदर, सुन्दरि संगहि लग्गिय ।
मार विराध, कबन्ध तथा हन ॥
मारुति मेल्लिय आदि विघट्टिय ।
राज सुग्रीवहिं दिज्ज अकंटक ॥
अथ समुद्र विनाशिय रावण ।
सो तोहुं राघव दिज्जिव निर्भय ॥'[2]

- अज्ञात या कवि वृन्द ।

1- काव्यधारा : पृष्ठ संख्या - 230 .
2- काव्यधारा : पृष्ठ संख्या - 459-61

जिनदत्त सूरि कृत 'उपदेश रसायन रास' (सं0 1171 वि0) में प्रशस्ति भाव की अनेक मुखी व्यंजनाएँ पाई जाती हैं । इस रास में श्रावकों को उपदेश दिया गया है । त्रिभुवन स्वामी जिनेश्वर और युग प्रवर अनेक शास्त्र प्रणेता निज गुरु जिन बल्लभ सूरि की वन्दना के उपरान्त आचार्य जिनदत्त सूरि भी गुरुवर को, कवि माघ, कालिदास, भारवि आदि संस्कृत के महाकवियों से श्रेष्ठ कवि स्वीकारते हैं । वे गुरु महिमा वर्णन के उपरान्त पतित व्यक्तियों की दुर्दशा का वर्णन करते हैं । इस रास में गुरु की वन्दना करते हुए, गुरु के पालक एवं रक्षक रूप का चित्रांकन एवं स्मरण किया गया है, जो प्रशस्ति परम्परा के विचार से शरणागत एवं वत्सलता के भाव का ही प्राविधान करता है ।

'सुगुरु सुवुच्चइ, सच्चउ भासइ,
पर परवापि नियरु, जसु नासइ ।
सव्व जीव जिव अप्पउ रक्खइ,
मुक्खमग्ग पुच्छि पउत्तु अक्खई ॥'[1]

'सव्व जीव जिव अप्पउ रक्खइ' से समस्त प्राणियों की अनुरक्षा के भाव की व्यंजना से ही कवि की वाणी गुरु की शिष्य वत्सलता एवं शरणदायिनी वृत्ति का अनावरण कर देता है ।

आचार्य जिनदत्त सूरि ने 'चर्चरी' भी लिखा है । 'नृत्य संगीत साहित्य एव लोक नाट्य चर्चरी कहलाता है, जिसका अभिनय प्रायः जन्मोत्सव पर होता था । आचार्य जिनदत्त सूरि ने अपनी 'चर्चरी' के आरम्भ में 'धम्म जिन स्तुति और जिन बल्लभ की स्तुति के उपरान्त सात पदों में आचार्य प्रवर के पाण्डित्य और सर्वशरण्य भाव का निरूपण किया है ।'[2] कवि कहता है कि मैं त्रिभुवन स्वामी जिनेश्वर स्वामी को नमन करता हूँ, मैं उनके चन्द्रमा के समान निर्मल, कमलवत चरण की वन्दना करता हूँ । आगे कवि उनके ज्ञानदामी, गुणदायी, सद - असद विवेकी रूप की छत्र-छाया में निर्भयता की अनुभूति करते हुए लिखता है -

---

1- डा0 दशरथ ओझा एवं शर्मा : रास एवं रासान्वयी काव्य > पृ0-3 से उद्धृत।
2- रास एवं रासान्वयी काव्य : पृष्ठ - 15

'नमिवि जिणेसर धम्मह तिहुयण साम्यिह,
पाय कमल ससि निम्मलु सिंध गय गामियह ।
करिमि जहट्ठिय गुण थुइ सिरि जिणि वल्लहह,
जुग परागम सूरिहि गुण गण दुल्लहह ॥
जो वायरण वियाणइ सुलक्ख गानिकउ,
सद-असद विचारइ सुवियक्खण तिलउ ।
सुर्ध्द दिण वक्खाणइ छंद जु सुजहमह,
गुरु लहु लहि पइठावइ नारहिउ विज्यमह ॥'[1]

अवतारी पुरुषों ने समय-समय पर इस धरा-धाम में निवसित भक्तों की रक्षा के लिए अपनी लीलाएँ की हैं । जैन मतावलम्बी भी इस बात को मानते हैं । कृष्ण के लोक रक्षक रूप को सामने लाते हुए 'गय सुकुमाल रास' के रचयिता श्वेताम्बर श्रावक ने कृष्ण की महिमा का जो गान किया है, उससे उनके प्रति कवि की प्रणति और कृष्ण के शरण दायक स्वरूप की ही प्रतिष्ठा होती है । कृष्ण के सुकृत-समूह को प्रकाशित करते हुए कवि श्वेताम्बर श्रावक लिखते हैं –

'संख चक्क गय पहर रण धारा,
कंस नराधिव कय संहारा ।
जिणि चाणउरि मल्लु विधारिउ,
जरा सिन्धु बलवन्त तउ धाडिउ ॥'[2]

जैन काव्य की परम्परा के प्रमुख कवि थे पुष्पदन्त, रइधू तथा स्वयंभू । 'स्वयम्भू ने अपनी दो वृहत्कृतियों की पुष्पिकाओं में अपने आश्रयदाता के नाम भी दिए हैं । पउम चरिउ की रचना धनंजय एवं हरिवंश पुराण की रचना धवल के आश्रय में की थी ।'[3] x x x x दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में महापुराणों का स्थान बहुत ऊँचा है । पुष्पदन्त ने चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ वासुदेव, नौ बलदेव तथा नौ प्रति

- -

1- रास एवं रासान्वयी काव्य : पृष्ठ 17 से उद्धृत ।
2- वही : पृष्ठ - 117 से उद्धृत ।
3- डा० रामसिंह तोमर : प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य : पृष्ठ - 103

वासुदेवों की कथा प्रस्तुत की है ।[1] धनंजय और धवल के आश्रय में रचित पउम चरिउ और हरिवंश पुराणकार स्वयम्भू ने आश्रयदाताओं की चरितावली के आश्रय या शरणदायी वृत्तियों का उन्मुक्त निदर्शन किया है । पुष्पदन्त ने तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वसुदेव, प्रति वसुदेव और बलदेव की कथाओं से जिस प्रशस्ति मूलक भाव-धारा को गतिप्रदान की है उसमें उनकी भक्त-वत्सलता की स्वर-साधना ही प्रमुख है । कहने का तात्पर्य यह कि जैन काव्य में व्यंजित प्रणति और शरणागति की भावना के आश्रय दैवीपात्रों के साथ ही साथ लौकिक पात्र भी हैं ।

हरिवल्लभ चुन्नीलाल भयाणी द्वारा सम्पादित 'पउम चरिउ' के भाग दो में राम के यशवर्णन का प्रसंग आया है । कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रसंग की छन्द संख्या 3,4,व 5 में राम के असुर संहारक, अद्वितीय लोक रक्षक, देवी-देवताओं से श्रेष्ठ और भक्तों के आरक्षक स्वरूप की व्यंजना करते हुए कवि ने राम के अशरण-शरण रूप का ही बिम्ब प्रस्तुत किया है । स्वयम्भू राम का यशगान करते हुए लिखते हैं –

'हुर समर सहसेहिं दुम्म हेण, कि उच्छवणु जिणिन्द हो दसरहेण ।
पट्ठवियइं जिणन्हणु धीवयाइं, देविहिं, दिव्वहि गन्धोदयाइं ॥
सुप्पहे हेपधर दन्तुइण पन्तु, पहुप मणयरह सुक्केलिय गन्तु ।
कहें कारणेपियाम्वणि मणी विसण्ण चिर चिन्तिय भित्ति वारीय विवण्ण ॥
जइहउं ऽ. पाण वल्लहिय देव, तो गन्ध सलिलु पावइण केम ।
तहिं अवसरे कज्जुइ दुक्कु पासु, क्षण ससि वणिस्तार धवलियासु ॥'[2]

स्तुति एवं आराधना मूलक प्रशस्ति :-

सच बात तो यह है कि धार्मिक काव्य में आराध्य के निकट उपस्थित कवि की मानसिकता उसकी स्तुति एवं आराधना के भाव से ही बोझिल होकर मुखर हो उठती है । वन्दना एवं आराधना की यही मूल भावना यशगान, शरणागति अथवा प्रपत्ति, सम्पदा एवं वैभव की अनेक धाराओं में प्रस्फुटित होकर काव्य-स्तर पर साकार हुई है ।

1- 'प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य : पृष्ठ - 104

2- पउम चरिउ : भाग - 2 : पृष्ठ - 8

जैन कवियों की काव्य-चेतना में, कवि होने के कारण प्रायः सरस्वती की वन्दना सामान्य रूप से पाई जाती है । जिणेश्वर (जिनेश्वर) श्रावकों, मुनियों की स्तुति एवं समाराधना से संपृक्त प्रशस्ति भी जैन काव्य में सहज सुलभ है । वन्दना, समाराधना अथवा स्तुति गान की यह प्रशस्ति-धारा यद्यपि प्रबन्ध काव्यों में अधिक है तो भी मुक्तकों में उसका किसी प्रकार का अभाव नहीं पाया जाता है ।

जम्बुसामि चरिउ के प्रणेता वीर कवि ने अपने काव्य में तीन तीर्थंकरों, महावीर, पार्श्वनाथ एवं ऋषभ देव की स्तुति-वन्दना करके अपने विद्याभ्यास, माता-पिता एवं प्रेरणादायकों का परिचय देकर कथा प्रारम्भ करते हैं । इस काव्य की कथा का कलेवर ही वन्दनामय है । मगधवासी श्रेणिक के घर महावीर स्वामी विपुलाचल पर पधारे । राजा अपने समस्त परिवार, परिजन, पुरजन व सेना सहित भगवान का दर्शन करता है और स्तुति वन्दना करके उचित स्थान पर बैठ जाता है ।[1] कवि महावीर जिनेन्द्र एवं पार्श्वनाथ की स्तुति में तल्लीन होता हुआ कहता है –

<u>महावीर की वन्दना</u> –

जिजयन्दु सौ चरणग्गे चंपिए मंदरम्मि गर हरिए ।
कल्लुब्बलंततीए पुरिंणिम गंति दु चेकारा ॥ 1 ॥
सो जयउ जस्स जम्माहिसेयपय-पूरपंडुरिज्जंतो ।
वणियहिमसि धरिसंतो कणयगिरि राइओ तइया ॥ 2 ॥
सो जयउ महावीरो घणाणल मुणियरइसुहो जस्स ।
नाणम्मि फुरइ भुवणं एक्कं नक्खत्तमिव गयणे ॥ 5 ॥[2]

<u>जिनेन्द्र की वन्दना</u> –

जयउ जिणो जस्सारुणनह मणिपडिलग्ग चक्कु सहस्सो ।
अणिया बच्च स आवयव दुव्वपरि कल्पिलोयणो जाओ ॥ 3 ॥
जयउ जिणो पास देव्व नामावण मिदे बाणपुरिय पडिबिंबो ।
भवियण्णस्थयुजलोव्व तिजयम्गुसासिउं रिसहो ॥ 6 ॥[3]

1- जम्बुसामि चरिउ : (सन्धि 1) : सम्पादक - डा० विमलप्रकाश जैन : पृ०-20
2- वही : सन्धि 1 : मंगलाचरण : श्लोक संख्या 1, 2, 5
3- वही : श्लोक संख्या - 3 व 6

पार्श्वनाथ की वन्दना –

जयउ सिरिपा सणाहो रेहइ जस्सगनीलिमाभिन्नो ।
पणिणो तडिच्छविवयनव घणोव्व मणिगब्भिणी फणकडप्पो ॥ 7 ॥[1]

वीर कवि ने न केवल महावीर जिनेन्द्र एवं पार्श्वनाथ की स्तुति गाई है अपितु सन्तों की परम्परानुसार गुरुवन्दना भी की है ।

पंचवि पणवेप्पिणु परम गुरु मोक्खमहागइगामिहि ।
पारंभिय पच्छिमकेवलिहि जिह कह जंबु सामिहि ॥
× ×   × ×   × ×   × ×
तित्थंकरु केवलनाणधरु सासयपयपहु   सम्मइ ।
जरमरण जम्म छिदं सयरु देउ देउ महु सम्मइ ॥ । ॥[2]

'जम्बुसामि चरिउ' की स्तुति परम्परा में संस्कृत स्तोत्र साहित्य जैसी प्रवृत्ति भी पाई जाती है । यद्यपि स्तुति एवं आराधना मूलक समस्त काव्य को स्तोत्र ही कहा जाएगा फिर भी उसके रचना-तन्त्र, उसकी भाव संकृति में एक विशिष्टता होती है । जम्बुसामि चरिउ में स्तोत्र की यह विशेषता भी पाई जाती है ।
उदाहरणार्थ –

नमिवि वीरं महसिरु धीरं तिलोयग थक्कं ।
विलोयाहुहारं जणंभीरुहणं पबोहिक अक्कं ।
सहाभासिरीए विराए सिरीए समुद्दिदत्त देहं ।
पइट्ठो नरिंदो सरामंत विंदो पुरं रायगेहं ।
जिणुद्दिट्ठ धम्मं सरंतो सुकम्मं हरंती ससेणो ।
म्यारोय णोणं द्धणोच्चत्थणोणं मगलोवधेणो ।
ह्याणेट्ठसंपी परागं दुलंघी पुरंतप्पयाणी ।
पवज्जंतढक्को भसाभ्क हक्को समुट्ठंतणो ।
रमाली ढक्को निवायारदक्खो पयापालणिट्ठो ।
सुमाणिक्कपारं महासोहदारं सगेहं पइट्ठो ।
समग्गे सहत्तो जिणं दस्स भत्तो सदाणोस भोओ ।

1- जम्बुसामि चरिउ : श्लोक संख्या - 7
2- सम्पादक डा० विमलप्रकाश जैन : जम्बुसामि चरिउ : सन्धि । : पृष्ठ 2-3

निस्सु घरेसु ठिओसुंदरेसुं पुरावासिलोओ ।
तओ ६.लसो कमेणं .के सुहमंडुधामि ।
चउत्थम्मिजामे तमोसेहरामे रि.स्णंमयंकि ।
पडाविढवण्णे दुअंधि दुवण्णे एहे तुलिधिकि ।
सिविणउ निज्झाइउ मंगलराइउ पह्लंकोवरि सुत्तियए ।
सायण्णुद्दामए जिणमइनामए अत्तयासकुलउत्तियए ॥ 5 ॥[1]

शारदास्तवन :-

जैन काव्य में पाई जाने वाली स्तुतियों में प्रथम एवं व्यापक कोटि की स्तुति वागीश्वरी सरस्वती की है । शारदा की स्तुति एवं उनकी समाराधना करना कवि के लिए तो अनिवार्य हो नहीं स्वाभाविक है क्योंकि कवि तो शारदा-पुत्र है ही । माँ की वन्दना एवं स्तुति करके आशीष पाए बिना बेटे कवि की कामना कुल ऐ अनुकूल फलित हो कैसे हो सकती है । जैन कवियों में प्रथारम्भ के समय सरस्वती की स्तुति करना एक सामान्य परम्परा सी दिखाई पड़ती है । यह काव्य रूढ़ि हिन्दी कविता में आज भी कम-अधिक आगे-पीछे चल रही है । जैन कवियों ने इसे एक कवि धर्म माना है । कविराज राजसिंह अपने जिणदत्त चरित में माँ शारदा का स्तवन करते हुए लिखते हैं –

'जहिं जिणवर मुंह कमल सप्तभंग वाणी जः अमइ ।
अगम छन्द तक्कवर वाणि, सारद सद्द अत्थ पय खाणि ॥'[2]

जो (शारदा) जिनेन्द्र भगवान के मुँह से प्रकट हुई है, जिसकी सप्तभंग मय वाणी है, जो अगम, छन्द एवं तर्क से युक्त है, ऐसी वह शारदा शब्द, अर्थ एवं पद की खान है । शारदा की जो वन्दना की गयी है, उसमें उनके गुणों एवं यशस्वी कार्यों का ही उल्लेख किया गया है किन्तु वन्दना अथवा स्तुति परक पद्धति अपनाने के कारण इन प्रसंगों को स्तुतिपरक प्रशस्ति मान लेना पड़ा है । कवि कहता है –

'गुणणिहि अडु रिज्झागम सार पुठि माल रहइ अयिचार ।
छन्द अक्खरि कला भावती, सुकइ सद्द पणवइ सरसुती ॥'[3]

1- जम्बूसामि चरिउ : सन्धि - 4 : पृष्ठ 65 - 66
2- सं० डा० माताप्रसाद गुप्त : कविवर राजसिंह कृत जिणदत्त चरित : स्तुति खण्ड : श्लोक संख्या - 14 : पृष्ठ - 6
3- वही : छन्द सं० - 15

'जो गुणों की निधि एवं विद्या तथा आगम की सार स्वरूपा है, जो स्वभावतः हंस की पीठ पर सुशोभित है, जिसे छन्द एवं अलंकार कलाएँ प्रिय हैं, ऐसी सरस्वती को सब्द कवि नमस्कार करते हैं।' जैन काव्यों में 'रास काव्य' का मुख्य स्थान है। यह साहित्य 10वीं से 15वीं शती के बीच शत-शत संख्या में लिखा गया है। देव गुप्ताचार्य ने इनके विषय की विवेचना करते हुए अपने ग्रन्थ 'भविष्य विवाण' में लिखा है कि इन ग्रन्थों में पूजा-आराधना का विधान किया गया है। स्नान करके, चन्दन चर्चित होकर, नवीन वस्त्र धारण करके सूर्योदय के समय अंजली में चावल, नारियल, कालिफल इत्यादि लेकर जिन प्रतिमा को नमस्कार किया जाता है। देव वन्दना एवं गुरु वन्दना के उपरान्त धार्मिक व्यक्तियों को भोजन कराने का विधान है।[1] कहने का तात्पर्य यह कि 'रास' काव्यों में धर्मवृत्ति की प्रधानता है और इस धर्म वृत्ति के मध्य स्तुति एवं वन्दना की प्रधानता है।

आम्बिग के 'जीव दया रास' में श्रावक धर्म का निरूपण किया गया है। आरम्भ में पुस्तक धारिणी सरस्वती की वन्दना की गयी है -

'उरि सरसति आम्बिगुभणइ, नवउ रासु जीवदया सारु।
कनुधरिवि निसुणीहुजण दुत्तरु जेम तरहु संसारु ॥ 1 ॥
जय जय जय पणमउ सरसती। जय जय जय रिवाव पुत्था हत्थी॥ 2 ॥
कसमीरएमुख भामदणिय, तहं तुगं हउ रयउ वहाणउं।
जालउरउ कवि वज्जरह देह, सरवरि हंसु वखाणउं ॥ 3 ॥[2]

'समरा रास' कार अम्बदेव सूरि ने अपनी कृति में भगवान जिनेश्वर के साथ सरस्वती की भी वन्दना की है। सं० 1371 में रचित इस काव्य को 12 भाषाओं में विभक्त किया गया है और आरम्भ में जो नान्दी पाठ के रूप में वन्दनात्मक प्रशस्ति के दर्शन होते हैं -

'पहिलउ पणमिव देव आसीसरु सेत्तुजसिहरे।
अनु अरिहन्त सवेवि आराहेउ बहुभत्ति भरे ॥ 1 ॥
-(जिन वन्दना)

1- सम्पादक डा० शर्मा: रास एवं रासान्वयी काव्य : पृष्ठ - 47
2- रास एवं रासान्वयी काव्य : पृष्ठ - 93

तउ सरसत्ती सुमिरेवि सारयसहर निम्मणीय ।

जसु पयकमल पसाय, मुरुख माणइ मन रलिय ॥ 2 ॥'[1]

— (सरस्वती वन्दना)

शालिभद्र सूरि की रचना 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' 203 छन्दों में लिखी गयी है । यह 500 वर्ष पुरानी रचना है । रास का प्रारम्भ एक ऐसे छन्द से होता है जिसमें जिनेश्वर, सरस्वती तथा गुरु तीनों की वन्दना एक साथ की है —

'रिसह जिणेसर पय पणमेवी, सरसति सामिनि मनि समरेवी,

नमवि निरन्तर गुरु चरणा ॥'[2]

स्तुति मूलक प्रशस्ति का विधान 'जम्बू स्वामीरास' में भी किया गया है । धर्म सूरि रचित इस रचना को प्रारम्भ में 'जम्बु स्वामि चरिय' कहा गया है, पर इसकी समाप्ति 'इतिश्री जम्बु स्वामि रास: ' से होती है । रचनाकाल सं0 1266 वि0 है । रचना धार्मिक है और जैन तीर्थंकर जम्बु स्वामी की कथा कही है । प्रारम्भ जिन वंदना, गुरु-वन्दना तथा सरस्वती की वन्दना से हुई है —

'जिण चउवीसइ पय नमेवि गुरु चरण नमेवि ।

जम्बु सामि हितणउं चरिय भविउ निसुणेवो ।

करि सानिध सरसत्ति देवि जियरयं कहाणउ ।

जम्बु सामिहि गुणगहण संखेवि बखाणउं ॥'[3]

कवि कहता है कि 24 तीर्थंकरों, गुरु तथा सरस्वती की वन्दना करके मैं जम्बु स्वामी चरित कहता हूँ सुनें ।

'राजस्थान भारती' वर्ष 3, अंक 2 में प्रकाशित 'गयसुकुमालरास,' जो देल्हण कवि की रचना है, में भी स्तुति मूलक ढंग से श्रुत देवी सरस्वती की वन्दना प्रारम्भ में की गयी है । इस रास में 'मुनि गज सुकुमाल' के चरित्र का वर्णन किया गया है, जिसका आधार प्राचीन जैनागम 'अंतगडदसासूत्र' प्रतीत होता है ।

1- समरा रास : स्तुति : छन्द संख्या 1 तथा 2

2- डा0 सुमन राजे : हिन्दी रासो काव्य परम्परा : पृष्ठ 135 पर उद्धृत ।

3- जम्बूस्वामी रास : (प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह: गायकवाड़ सिरीज संख्या 13 : 1920 ई0 में प्रकाशित) : छन्द संख्या - 1

कवि रत्न विभूषित श्रुत देवी को प्रणाम कर रास प्रारम्भ करता है —

> 'पणमेविवु सुय देवी सुयरयण विभूसिय,।
> पुत्थम कमल करोए कमलासन संठिय ॥ । ॥'[1]

'पंचपाण्डव चरित रास' के रचयिता शालिभद्र सूरि ने अपने काव्य में गंगा और शान्तनु के विवाह की कथा का वर्णन करते हुए 15 ठवणियों में पाण्डव-कौरव का वृतान्त प्रस्तुत करते हैं । शालिभद्र सूरि ने भी वागीश्वरी सरस्वती का स्तुतिगान किया है —

> 'नेमि जिणेसर पयपणमेवी
> सरसति सामिणि मनि समरेवी
> वंविक माधे अनुसरउ ॥ । ॥'[2]

63 छन्दों में शालिभद्र सूरि द्वारा रचित 'बुद्धिरास' ग्रहण करने योग्य जीव बचन का एक संग्रह मात्र है । इस रास में भी एक अन्य शक्ति (अम्बा देवी) की वन्दना मूलक प्रशस्ति का विधान किया गया है । कवि शालिभद्र सूरि अम्बा देवी की प्रशस्ति का गान करते हुए लिखते हैं —

> 'पणमवि देवि अंबाई, पंचानण गामिणी ।
> समरवि देवि सोवाई, जिण सासण सामिणी ॥ । ॥
> पणमिउ गणहरु गोयम सामि, दुरिउ पणासय जेह न सामिई ।
> सुध गुरु वयणे संग्रह कीजई, भोलां लोक सोषामण दीजई ॥ 2 ॥'[3]

निश्चित है कि इस पद की प्रथम पंक्ति में पंचानन गामिनी माँ दुर्गा की प्रशस्ति की स्तुति के रूप में प्रस्तुत किया गया है । किन्तु नारी शक्ति की वन्दना के विचार से ऐसे पदों की संख्या जैन काव्य में कम ही है ।

अधिकांशतः सरस्वती को ही नारी शक्ति के रूप में स्तुति मूलक विरुदावली का विषय बनाया गया है । सुमति गणि सूरि ने अपनी कृति 'नेमिनाथ रास' के आरम्भ में ही सरस्वती की वन्दना की है तदुपरान्त नेमिनाथ रास का वर्णन

1- गयसुकुमाल रास : छन्द संख्या - ।
2- रास एवं रासान्वयी काव्य : पृष्ठ - 148 पर उद्धृत ।
3- बुद्धिरास : अम्बा देवी वन्दना : छन्द संख्या - 1, 2।

किया है । माँ वाणी का स्तवन करते हुए सुमति गणि लिखते हैं —

'पणमिव सरसइ देवी सुइ रयण विभूसिय ।
पमणि सुनेमि सुरासी जण निसुणे तूसिय ॥ । ॥'[1]

स्पष्ट है कि कवि अपनी रचना की समंगल समाप्ति के विचार से सरस्वती का स्मरण करता है ।

जैन काव्य में जैनेन्द्र को स्तुति एवं वन्दना प्रायः सभी ग्रन्थों में किसी न किसी स्तर पर पाई जाती है । 'पउम चरिउ' कार ने अपनी ऐतिहासिक कृति में भगवान जिनेन्द्र की वन्दना मूलक प्रशस्ति का काव्यात्मिक स्थल प्रस्तुत किया है । वे लिखते हैं —

'किय वन्दण सुह-गई-गामियहो, आवें चन्दप्पह सामियहो ॥
जयतुहुं, गइतुहुं, सरणतुहुं, मायवप्पु तुहुं बन्धु - जणु ॥
तुहुं परमपक्खु, परमत्ति हरु, तुहुं सव्वहुं, परहुं पराहिपरु ॥
तुहुं दंसणे णाणे चरितेथिउ तुहुं सयल सुरासुरेहिं णमिउ ॥
सिद्धन्ते, मन्ते तुहुं वायरणे, सज्झाए झाणे तुहुं तव्वरणे ॥
× × × × × × × ×
अरहन्तु, बुद्ध तुहुं, हरवि, तुहुं अराणाम-तमो हरिव ।
तुहुं सुहुम णिरञ्जणु परमपउ तुहुं रवि वम्भु, सयम्भु, सिउ ॥'[2]

कविवर राज सिंह का 'जिणदत्त चरित' जिसका उल्लेख पीछे किया जा चुका है, एक चरित काव्य है । इस चरित काव्य के स्तुति खण्ड के अन्तर्गत कविवर राजसिंह ने जिनेन्द्र की स्तुति मूलक प्रशंसा का गान किया है —

'णविवि जिणवर आसि जे नित्त ।
रिसहाई धम्मुद्धरण, णविवि तं जि गय कालि हों सहिं ।
सइ संपहिं चिन्ति पुणु, ताइं णविवि जं दम हो होइहिं ॥
णाहिणरेसरु सुउ रिसहु, वीर सिउ धम्म पवाहु ।
सो जय कारवि रल्ह कइ, आइ-अणाइ जगणाहु ॥'[3]

1- नेमिनाथ रास : सरस्वती वन्दना : छन्द संख्या - 1 ।
2- सम्पादक - डा0 हुन्नलाल भयाणी : पउम चरिउ : भाग-1 : पृष्ठ -49 ।
3- डा0 माताप्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित 'जिणदत्त चरित' : स्तुति खण्ड : छन्द संख्या - 1 ।

अर्थात् धर्म का उद्धार करने वाले जो ऋषभादि वर्तमान तीर्थंकर हैं, उन्हें नमस्कार करके तथा जो तीर्थंकर हो गए हैं और जो भविष्य में होंगे, उन्हें नमस्कार करके तथा उनके साथ (संघ) में पृथ्वीतल पर जो कर्मों का शोषण करने वाले सिद्ध हुए उन्हें नमस्कार करके नाभि नरेश के सुत जिन ऋषभ देव ने धर्म प्रवाह को वर्षा की, स्वयं कवि ऐसे जय के कारण स्वरूप जगत के नाथ आदिनाथ (को नमस्कार करता है) । इसी प्रकार वीर कवि ने अपने 'जंबूसामि चरिउ' में जिनेन्द्र की जो वन्दना की है वह अपनी शैली एवं संपदा में एक उच्च कोटि के स्तोत्र काव्य का उदाहरण प्रतीत होता है । जंबूसामि चरिउ के प्रणेता द्वारा जिनेन्द्रकी स्तुति के कुछ उदाहरण पीछे दिए जा चुके हैं फिर भी स्तुति मूलक प्रशस्ति के विचार से यह स्थल उल्लेखनीय है –

'तुमं देव ख्खण्णु सव्वोरिसालो अहं वण्णिउं न सक्केमि बालो ।
सहुल्लोहयारोव वा तेयपूरो न पुच्छिज्जए किं पयचेण सूरो ।
न ते वायापक्ख पूयाए तो को न वा संत वयरस्स निंदाए रोसो ।
परं ते सहुगोरियं देव नामं गालेउ चित्तं मलं दुक्ख धामं ।
तुमं पुज्जमाणस्स लोयस्स रत्तो महापुण्णपुंजम्मि सावज्जलेसो ।
कओ जेम हासाहसाभावस्सयओ दुहाराव यरंदूरिउं नो समत्थो ।
अदिट्ठो तए देव सिद्धो सम्मगो तिलोयग्गगामीण भव्वाण मग्गो ।
पर्यंतो जओ मोह दाहादिरवद्धो कि जो देव वायाहुयाए विसुद्धो ।
तुमं पत्त संसार कूवारतीरो तुमं सामि सपुण्णविज्जासरीरो ।
तए नाणजोईए उद्दित्तलिंगे सहुभासए चंद सूराण तेयं ।
तुहाभासइं दप्पणे पेच्छमाणा मुहं देव पेच्छंति आला अपापा ।
तहावल्लुयंवं यउं उद्दिश हुम्दा सत्वं निरवीते ते नाह दुद्दा ।
तुमं थायमाणस्स नाणाम्मि लीणं मणं होउ मे नाह संकप्परवीणं ।
अतिदवरियणपउसहुं धीलमयरहिं नरेसरु ।
कोट्ठह निदिट्ठ स्यारह मैं वंदवि वारु जिणेसरु ॥ 18 ॥'[1]

जैन सम्प्रदाय से भिन्न काव्यधारा में, जिसे हम लोक-रस का काव्य कहते हैं, 'सन्देश रासक' नामक कृति का विशेष स्थान है । इसके कवि अद्दहमाण

1- डा० विमलप्रकाश द्वारा सम्पादित 'जंबूसामि चरिउ' : सन्धि 1 : पृ० 20-21.

(अब्दुल रहमान) ने ईश्वर कीवन्दना के रूप में उनकी प्रशस्ति बखानते हुए लिखा है –

'रयणायर धर गिरि तरुवराइं गयणं गणं विरिक्खाइं ।
जेणज्जसयल सिरियँसो ब्रह्यणवोसिवं देउ ॥ । ॥
माणुसदिव्व विज्जाहरेहिं णाहमंमि सूरससिविंवि ।
आसहिं जो णामिज्जइ तं णयरे णायह कत्तारं ॥ 2 ॥'[1]

'भारतेश्वर बाहुबलि घोर रास' 'सन्देश रासक' के बाद सबसे पुराना रास काव्य है । इस कृति मेंजैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर ऋषभ देव के दो पुत्रों भरत और बाहुबलि के मध्य युद्ध का जीवन्त वर्णन किया गया है । ग्लानिवश बाहुबलि ने जिन धर्म में दीक्षा ले ली थी । जैनेन्द्र की स्तुति करते हुए भारतेश्वर बाहुबलि घोर रास के प्रणेता ने लिखा है –

'पहिलउं जिणन्द नमवि भवि यहु निसुणहु सेहुधरेवि ।
बाहुबलि दे रउ विजउ ॥ । ॥
सयलसहु लक्खणविव ेवि भरहेसर नियपरिठवेवि ।
रिसहेसर्रासिवामि धियउ ॥ 2 ॥[2]

इस वृत्तान्त को लेकर लिखा गया था 'भारतेश्वर बाहुबलि रास' भी, पर उसके प्रणेता शालिभद्र सूरि थे । यह भी प्राचीनतम रास ग्रन्थ है । 'जम्बूस्वामी रास' को प्राचीनतम माना जाता रहा, इस रास के 35 वर्ष बाद लिखा गया । इसमें जैन धर्म के आदि देव ऋषभ देव के दो पुत्र भरत और बाहुबलि के राज्याधिकार के लिए किए गए संघर्ष का वर्णन है । इसमें जिनेन्द्र की वन्दना मूलक प्रशस्ति भी उल्लिखित है –

'रिसह जिणेसर पय पणमेवो,
सरसति सामिणि मनि समरेवो,
नमवि निरन्तर गुरु - चरणा ॥ । ॥'[3]

'रेवन्तगिरि रास' में विजयसेन सूरि ने परमेश्वर तीर्थंकर तथा अम्बा देवी का स्मरण करके इस रास की रचना की है । इसकी कथा भी प्रशस्ति वृत्ति वाली प्रतीत होती है । पश्चिम दिशा में मनोहर देव भूमि के समान सुन्दर गांव,

---

1- रास एवं रासान्वयी काव्य : पृष्ठ 25 पर उद्धृत ।
2- वही : पृष्ठ 57 पर उद्धृत ।
3- रास एवं रासान्वयी काव्य : पृष्ठ 60 - 61 ।

पुर, वन, सरिता, तालाब आदि से सुशोभित सोरठ देश है । वहाँ मरकतमणि के मुकुट के समान रैवन्तगिरि (गिरिनार) शोभायमान है । जहाँ निर्मल यादव कुल के तिलक नेमिनाथ का निवास स्थान है । विजय सेन सूरि की दीक्षा से गुर्जर धरती के दो मन्त्री - वस्तुपाल एवं तेजपाल धर्म में दीक्षित हो जाते हैं । तीर्थंकर की वन्दना करते हुए कवि लिखता है —

'परमेसर तित्थे सरह, पय पंकय पणमेवि ।
भणि सुरासु रैवन्त गिर, अंबिकदिवि सुमरेवि ॥ 1 ॥
गामागरपुरवण गहण, सर सरवरि सुप - यसु ।
देव भूमि दिसि पच्छिमहं मणहरु सोरठ देश ॥ 2 ॥
जिणतहिं मंडल मंडणउं मरगय मउडमहंतु ।
निम्मल सामल सिहर भरे रेहइ गिरि रैवन्त ॥ 3 ॥
तसु सिरि सामिउ सामलउ सोहगसुन्दरु सारु ।
जाइव निम्मल कुल तिलउ निवसइ नेमि कुमारु ॥ 4 ॥'[1]

जैन काव्यों में चरित एवं रासा के साथ ही फागु काव्य का भी प्रमुख स्थान है । इन फागु काव्यों में भी प्रशस्ति के विभिन्न रूपों के दर्शन होते हैं । स्तुति मूलक प्रशस्तियाँ भी इन फागु काव्यों में पाई जाती हैं । 'जिनदत्त सूरि फागु' में जैन फागु के रूप में बसन्त का सुन्दर वर्णन किया गया है । अन्त में काम पर विजय पाने के प्रयत्नों का चित्रण है । इस फागु के प्रारम्भ में 16वें तीर्थंकर स्वा0 सन्त जी को प्रणाम किया गया है । यह काव्य जैन साहित्य और हिन्दी साहित्य का भी प्रथम फागु काव्य है । स्तुति मूलक प्रशस्ति विधान इस फागु में भी द्रष्टव्य है । यथा —

'अरे पणमवि सामिउ सन्ति जु सिव्वाउलिउरहारु ।
अरे अणहिल्वाड मंडगाट सज्जिव तिहुयण सारु ॥
अरे जिणपवीए सूरि पासिहिं सिरि संजमु सिरि वन्नु ।
अरे गायवउजिण चन्द सूरि गुरु कायल देवि सुपुत्तु ॥'[2]

अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर में 'महावीर रास' की एक प्रकाशित

1- रास एवं रासान्वयी काव्य : पृष्ठ - 108.
2- वही : पृष्ठ 131 पर उद्धृत ।

प्रति प्राप्त हुई है। इस रास के रचयिता अभय तिलक गणि हैं। इसकी रचना सं० 1307 में हुई थी। इसमें जिनालय की प्रतिष्ठा के साथ-साथ पार्श्वनाथ जिनेन्द्र की वन्दना की गयी है –

'पासनाह जिणदत्त गुरो अनुराय पउम पणमेवि ।
पभणि सुवीरह रासलउ अनु साम्भलह भविय मिलेवि ॥'[1]

बीकानेर के जैन ग्रन्थालय में ही एक अन्य अप्रकाशित रास 'शान्तिनाथ देव रास' भी प्राप्त हुआ है। अगरचन्द नाहटा के अनुसार इसकी रचना सम्वत् 1311 में मानी जा सकती है। इसमें कुलमिला कर 60 छन्द हैं। प्रारम्भ की पंक्तियों में सन्त जिनेश्वर की वन्दना की गयी है। जिनेश्वर की स्तुति परक प्रशस्ति गान करते हुए कवि ने लिखा है –

'सन्ति जिणेसर चरण कमल कमलह आवासु ।
सरसति सिय सरसंग पुरविय दास आसु ॥'[2]

रास काव्य की परम्परा में अन्य वर्णित काव्यों में 'सप्तक्षेत्रि रास' का भी नाम परिगणित किया जाता है। यह रास काव्य जिन मन्दिर, जिन प्रतिमा, ज्ञान, साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका की उपासना के वर्णन से पूर्ण है। यही कारण है कि इसका नाम 'सप्तक्षेत्रिरास' है। रचनाकाल सम्वत् 1327 है। प्रारम्भ में अर्हन्त की वन्दना की गयी है –

'ध्याये अरिहन्त नमेवो सिद्ध सूरि उवझाय ।
परमागम भूमि साहु तीह पणमिय पाय ॥'[3]

'कच्छूली रास' में भी स्तुति मूलक प्रशस्ति के स्थल पाए जाते हैं। इसकी रचना सम्वत् 1362 में धोणि दावण में हुई थी। प्रारम्भ में पार्श्वजिण को नमस्कार किया गया है –

1- हिन्दी रासो काव्य परम्परा : पृष्ठ - 143.
2- वही : पृष्ठ - 143.
3- हिन्दी रासो काव्य परम्परा : पृष्ठ - 144.

'गणवइ जो जिम दुरीउ विधंउणु रीला निवारण,
तिहुयण मंडणु पणमवि स्वामिउ पास जिणु ।
थिरिभद्दे सर सूरिहिं पसीवोजोसाईह,
वंभिसु रासो धमीय रीला निवारीउ ॥'[1]

'थुलिभद्र रास' जिसे अगरचन्द नाहटा धर्म सूरि की ही कृति होने का अनुमान करते हैं, में भी स्तुति परक प्रशस्ति भाव से मण्डित पदों के दर्शन होते हैं। ऐसी स्थिति में इस कृति का रचना काल भी 13वीं शती में मानना पड़ेगा। जो भी हो इस रचना में पाटलिपुत्र के शासक नन्द के मन्त्री शकटार के पुत्र थुलिभद्र की कथा कही गई है। कवि प्रारम्भ में ही स्तुति मूलक प्रशस्ति के रूप में शासन देवी की वन्दना करता है -

'पणमवि सासण देवी अनस्वायसरि,
थुलिभदद गुण गहणु मुणि धरह जु के सरि।
पभणइ थुलिभदद वहु रासु पाडलि पुत्ति नयरि जसु ॥'[2]

जैसलमेर के ज्ञान भण्डार से 'शान्तिनाथ रास' नाम से एक अप्रकाशित प्रति प्राप्त हुई है। यह 'शान्तिनाथ देवरास' से भिन्न कृति है। इस कृति के कर्ता का नाम ज्ञात नहीं है। इस रचना के प्रारम्भ में शान्तिनाथ जिनालय का वर्णन है। इस कृति का रचना काल 1258 वि० माना जाता है। इसमें स्तुति भाव से प्रशस्ति गाते हुए कवि लिखता है -

'पंचमभरह नरिंदो जिणवइ सोल समी।
सन्ति सहुंलर वंदी पणमिय पयहि यनउ ॥'[3]

रास काव्यों में 'उपदेश रसायन रास' को प्राचीनतम रास काव्य माना गया है। जिनदत्त सूरि कृत यह रचना विक्रम सं० 1200 के लगभग लिखी गयी है। इसका आरम्भ जिनदत्त वन्दना से हुआ है। कवि जिनेन्द्र की स्तुति परक प्रशस्ति का

1- हिन्दी रासो काव्य परम्परा : पृ० 147.

2- हिन्दी अनुशीलन : वर्ष - 7 : अंक - 3 : पृष्ठ - 40.

3- हिन्दी रासो काव्य परम्परा : पृ० - 141.

गान करते हुए लिखता है कि –

> 'पणमइ पास - वीरजिण भाविण ।
> तुम्हि सब्बि जिण मुच्चहु पाविण ।
> घरधवहारि म लग्गा अच्छइ ।
> खणि खणि आउ गलंतउ पिच्छइ ॥ । ॥'[1] .

'थूलिभद्र रास' के अतिरिक्त 'थूलिभद्र फागु' में भी स्तुतिमूलक प्रशस्ति के रूप अनुगुंजित हैं । आचार्य जिन पद्म सूरि ने इस काव्य का मंगलाचरण प्रस्तुत करते हुए जिनेन्द्र को प्रणाम किया है तथा सरस्वती का स्मरण । जिनेन्द्र उनके धर्म देवता हैं और सरस्वती वाणीश्वरी हैं । उभय आराध्यों की महिमा का यह अनुभव ही इस छन्द में प्रशस्ति की प्रधान भावना है –

> 'पणमिय पास जिणिंद-पय अनुसरसइ समरेवी ।
> थूलि भद्द-मुणिवइ भणिसु फागु बन्धगुण केवी ॥ । ॥'[2]

'स्तुति मूलक प्रशस्ति के विचार से जैन काव्य में महिमा का आरोप अधिकांशतः जिनेन्द्र और सरस्वती पर ही किया गया है । जैन धर्म तीर्थंकरी धर्म है, इसलिए तीर्थंकरों के विभिन्न अवतारों की महिमा का सर्वोपरि होना बहुत स्वाभाविक था । यह एक कोटि के कवियों को विराट सत्ता की जिसकी महिमा का गान किया जाना अनिवार्य था । विद्या और ज्ञान की साधना का सूत्र अर्थात् वाणीविलास के लिए सरस्वती का नमन करना स्वाभाविक हो रहा । धर्म और ज्ञान की वृत्ति से जुड़ी हुई जिनेन्द्र और सरस्वती की यह स्तुति मूलक प्रशस्ति भाव-धारा जैन सन्तों की देन है । इस जैन सन्तों ने अपनी रचनाओं में अपने आराध्य के यश, प्रताप एवं महिमा का गान भी किया है ।

स्तुति एवं आराधना मूलक प्रशस्ति की रचना करने वाले इन सुख्यात कवियों के अतिरिक्त 12वीं, 13वीं तथा 14वीं शती के जैन कवि वर्द्धमान सूरि,पल्ह, साध्वी सिरिमा महत्तरा, जिनमति सूरि, शाहरयण, भत्तउ, पाल्हणु, कल्हु,अमर प्रभु

1- हिन्दी रासो काव्य परम्परा : पृष्ठ 133-34.

2- रास एवं रासान्वयी काव्य : पृष्ठ - 140.

सूरि, देवसिन, लक्ष्मी तिलक, सोम मूर्ति, पद्म रत्न, वेसु, लक्ष्म सोह, जिनचन्द्र सूरि, सहजज्ञान, चारित्र गणि, हेम तिलक सूरि, जयधर्म शान्ति भद्र और अनेक अज्ञात नामा कवियों की रचनाओं का जो संकलन श्री अगरचन्द नाहटा ने अभय जैन शास्त्र भण्डार बीकानेर की पोथियों के आधार पर प्रस्तुत किया है,[1] उसमें जैन दिगम्बरों, श्रावकों, सन्तों और मुनियों के प्रति भाव गुम्फित स्तोत्र, स्तवकात्मक प्रशस्ति, स्तुति एवं आराधना मूलक यशगान प्रचुर मात्रा में सुलभ है। यहाँ अनावश्यक विस्तार से बचने के लिए इन रचनाकारों की कृतियों का उद्धरण देना तो सम्भव नहीं है, पर संक्षेप एवं विश्वस्त रूप में यह निर्देश कर देना आवश्यक है कि इन फुटकल पद्यों के संकलन जैन काव्य की प्रशस्ति भावना के विचार से अपना विशिष्ट महत्व रखते हैं। जैन काव्य की किसी भी धारा का अनुशीलन करने वाले शोधार्थी के लिए नाहटा जी के इस ग्रन्थ को नजरन्दाज कर पाना कठिन है।

यश एवं प्रताप मूलक प्रशस्ति :-

जैन कवियों ने जिन चरित काव्यों की रचना की है उनमें आयातित होने वाले तीर्थंकरों, महापुरुषों, चक्रवर्तियों और विशिष्ट आचार्यों का जीवन चरित चित्रित किया गया है। कविवर राजसिंह ने अपने 'जिणदत्त चरित' में राजा राजशेखर का यशगान करते हुए लिखा है कि उसकी राजधानी स्वर्ग के टुकड़े के समान लग रही है। यह वसन्तपुर नगर घना बसा हुआ है और चन्द्रशेखर उसका राजा है। उस राजा के महल में मणि, मोती एवं रत्न चमकते हैं। अन्तःपुर में प्रत्येक व्यक्ति के लिए 20 - 20 आवास हैं। वहाँ सभी लोग प्रेम से रहते हैं। उन्होंने अपने विहार होने के बन्धवाए हैं, किसी की मृत्यु की कोई इच्छा नहीं करता, सभी जीव दयालु हैं। कोली, माली, वस्त्र विक्रेता एवं चोरा सभी के हृदय में दया का भाव विद्यमान है। ब्राह्मण, क्षत्रिय सभी श्रावक धर्म में रत हैं। किसी को मारने की कल्पना तक नहीं की जाती और छत्तीसों जातियाँ जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार करती हैं —

'चंदसेखर राजा के भवण, दिपदित माणिक मोती रयण।
सयहु अंतियउ रुपि-विासु, औस बीस सवणहु अवासु ॥ 41 ॥

1- जैन मरु - गुर्जर कवि और उनकी रचनाएं : पृष्ठ 1 - 45 तक।

वसहित सयल लोय सुपियार, कंचण मइ तिन्हु कियए विहार ।
पर कहुमोचुण दंडइ कोइ, जीव दया पालइ सब कोई ॥ 42 ॥
कोलो मालो पालहिं दया, पखा जीव कहु ईछहि म्या ।
पारधी जीवण पालहिं पाउ, दया धम्मु कउ सच्चौ भाउ ॥ 43 ॥
बाभण खत्री अवराति चर्म, ते सब पालक सावग धर्म ।
मारण णाइ दियइं वलमलो, जिणवरु णवहिं बलोधउ कुली ॥ 44 ॥'[1]

जैन साहित्य के इतिहास में महाकवि स्वयम्भु देव का स्थान निर्भ्रान्त रूप से अप्रतिम है । अपभ्रंश महाकाव्यों की परम्परा में 'पउम चरिउ' का स्थान भी सर्वोपरि माना गया है । राम के प्रताप एवं यश का वर्णन करते हुए कविवर स्वयम्भु ने प्रशस्ति - भावना का उत्कर्ष कर दिया है । वे लिखते हैं –

'एकु दोपीहिं राम अलि थो... जाउ थिरियर रंभ्बा यहो ।
कन्ति महोहरु सिहरु जहि निविहिउ थियउ दसाणण-राय हो ॥
तु रहो सहु दुव्विलिउद्धरो बुद्धिए लंकर्ण देल सहुदद हो ।
एवं ए काले कणिपई जाणउ मणेण दिव्णु विहीसणु राणउ ॥
थोसुल-सेहु समावउ वज्जें पुरिणन्दान्ति णट्ठ विणु धज्जे ।
कहो जिमेरउण णिउणि वारिउ एवहिं दुसन्चवजणेरारिउ ॥
तो किसणेहिं परिहच्छावभि उप्पेहंधियउ पर महिला णणु ।
एमयि... इ महुण थियउ पुत्तउ तोरिउ-राहवें मिलमिणित्तउ ॥
उप्पाणु विण होइ सधारिउ पारेहरिएउ पागा पारिउ ॥
दुहिंदें दुल, पडिकुलणउवरहें सहोयरु जो अणु अन्तरु ।
ओसहु दुस्पराणउ निवाहि सरोरहो कहुहे विघत्तइ ॥'[2]

इसी महाकाव्य के 89वीं सन्धि में 19 छन्दों के माध्यम से कवि स्वयम्भु देव ने 'उत्तर काण्ड' के अन्तर्गत एक लम्बी प्रशस्ति यशगान के रूप में लिखी है । यह प्रशस्ति एक ओर कवि की भक्ति-भावना से विभूषित देवी-भाव की उन्मीलित

1- जिणदत्त चरित : वसन्तपुर नगर वर्णन : छन्द संख्या 41 - 44.

2- सम्पादक - डा0 हरिवल्लभ चुन्नीलाल भयाणी.: पउम चरिउ : भाग-3 : चउत्थ जुज्झ काण्ड : पृष्ठ - 1.

करती है तो दूसरी ओर उसकी वर्णन परम्परा उसे दरबारी प्रशस्ति के प्रणेता के रूप में सामने लाकर खड़ा कर देती है –

'सिरि-विज्जाहर कण्डे संधाओ होन्ति वीस परिमाण ।
उज्झा कण्डम्मि तहा बावीस मुणेह गण णए ॥ । ॥
x x x x x x x x
सन्त महा सग्गोगो ति-रयण-भूसा सु-नाम वद-कण्णा ।
तिहुअण सयम्भु जणिया परिणउ वन्दइय मण-तणयं ॥ ।9 ॥'[1]

स्वयम्भू ने नगर-वर्णन प्रसंग के अन्तर्गत मातृभूमि की प्रशंसा के अतिरिक्त देश विजय के नाम से देशों के जो नाम गिनाए हैं उसमें प्रताप एवं यशमूलक प्रशस्ति का स्वर ही अनुगुंजित है । मातृभूमि की प्रशंसा का भाव व्यंजित करते हुए कवि स्वयम्भू लिखते हैं –

'धुवंत धवल ध्वज वर-प्रवरू । प्रिये ; पेखु अयोध्यापुरि नगरू ।
पुरू जन्म-भूमि जननीहिं सम, आन ि भूषित जिनवरीहिं ।
पुनि वंदि हि र स्वयंभु कीहि, जनक तनय - हारे - हलधीहिं ।'[2]

इसी प्रकार देश विजय का ब्योरा देते हुए कवि ने प्रताप एवं यशमूलक प्रशस्ति भाव से भूषित बड़ी मूल्यवान पंक्तियां लिखी हैं जिन्हें नीचे उद्धृत किया जा रहा है –

'परि-आरूढ़ नराधिव अजहिं । साधन मिलेउ अशेषउ तअहिं ।
लेख लिएवउ जगविख्यातहु । तुरत विसज्जउ महिधर-रायहु ।
आगे स्थिए वद्धर्द पेखुव । हरिणाक्षरहिं लीन जनु रिखु'व ।
सुन्दर राम्वंतरर.साधुव । नाद-पंगुल सरि गंगप्रवाहुव ।
दीन राय तहं आय रानंतउ । स्लल-विसल्ल-सिंहनिक्रांतउ ।
दुर्जय-अजयविजय जयजयमुख । नर-शार्दूलविपुल गज गजमुख ।
रूद्रवत्सु-महिवत्स-मरूध्वज । चंदन-चंदोदर-गरूड़ध्वज ।
• केसर-मारी-चंड-यमघंटा । कोंकण-मलय-पाड्या-नट्टा ।
गुर्जर-गंग-वंग-भंगाला । पश्चिय-पारियात्र-पंचाला ।
सिंधव-कामरूप -गंभीरा । ताप्ति-पारसोल-परतीरा ।

1- सम्पादक - डा०हरिवल्लभ चुन्नीलाल भायाणी : पउम चरिउ : भाग-3: उत्तराकाण्ड: प्रशस्ति गाथा : छन्द संख्या । - ।9 तक ।
2- वही : नगर वर्णन : रामायण 76/20.

मरुकर्नाट-लाट-जालंधर । टक्क-अहीर-कीर-खस - बर्बर ।
अवरहु जे एक एक प्रधाना - - - - - - - - ।।[1]

कवि देवसेन कृत 'भविसयत्त कहा (भविष्यदत्त कथा)' जैन कथा काव्य का एक प्रमुख ग्रन्थ है । इस ग्रन्थ में दान एवं धर्म की महिमा का परिवेश सापेक्ष रूप से निरूपित है । दान और धर्म की ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जिनको अपना कर व्यक्ति भारतीय समाज में महान माना जाता है । देवसेन ने अपने कथा काव्य में भविष्य दत्त को दान शीलता और धार्मिकता का निरूपण करते हुए जो उद्गार व्यक्त किया है, वह धर्ममूलक प्रशस्ति का एक उत्तम उदाहरण है --

'यदि गृहस्थ दानहिं बिना, जग में भणियत कोइ ।
तो गृहस्थ पंछिहु हवैं, जो घर ताकउ होइ ।। 87 ।।
धर्म करो यदि होइ धन, एहु दर्शन न बोल ।
संसारउ जम भवन ते, काढइ झालिके दालि ।। 88 ।।
काह बहुतहिं धनहिं, जहिं कृपणहिं घर होइ ।
उदधि नीर खारे भरेउ, पाणिउ पियै न कोइ ।। 89 ।।
-- दान महिमा
धर्महिं सुख पापहिं दुख, एह प्रसिद्धउ लोइ ।
ताते धर्म समाचरहु, जेहि पाँवित होइ ।। 101 ।।
काइ बहुते जम्पने, जो कहने प्रतिकूल ।
काहु दुख होना काह, एहु जे धर्म की मूल ।। 104 ।।'[2]

महाकवि पुष्पदन्त एक राज्याश्रित कवि थे । इन आश्रित कवियों में राजाओं की युद्धवीरता, दान वीरता एवं उनकी प्रशंसा में कविता करना प्रिय विषय रहा है । भारतीय साहित्य में इसकी अविच्छिन्न परम्परा मिलती है । 'प्राकृत पैंगलम्' में अनेक राजाओं से सम्बन्धित राज प्रशस्ति परक पद्य मिलते हैं ।[3] पुष्पदन्त ने भी अपनी रचनाओं में प्रशस्ति भावना की स्वस्थ परम्परा का प्रवर्तन किया है ।

1- हिन्दी काव्य धारा : पृष्ठ 73 पर उद्धृत ।
2- वही : पृष्ठ- 171.
3- डा0 शम्भुनाथ पाण्डेय : आदिकालीन हिन्दी साहित्य : पृष्ठ - 35.

अपने आश्रयदाता मन्त्री भरत की प्रशंसा करते हुए कवि ने परिनिष्ठित अपभ्रंश भाषा में लिखा है –

'जनमन-तिमिर-अपहरण मदकरिवारण, निज-कुल-कमल-दिवाकर ।
हे हे वैभव-सतुरंग-नवशरराह । सुख काव्य रतन - रत्नाकर ।
ब्रह्माण्ड-मंडपारूढ़-कीर्ति । अनवरत-रचित-जिननाथ - भक्ति ।
शुभ तुंग देव-क्रम-कमल-भ्रमर । निःशेष-कला-विज्ञान-कुशल ।
प्राकृत-कवि-काव्य-रसावलुब्ध । संपीय सरस्वति-सुरभि-दुग्ध ।
कमलाक्ष अमत्सर सत्यसंध । रण भर-धुर-धरण-उद्घुष्ट-स्कंध ।
सविलास-विलासिनि-हृदय-स्तेन । सुप्रसिद्ध-महाकवि - कामधेनु ।
कानीन-दीन-परिपूरि तास । यशप्रसर-प्रसाधित-दश-दिशास ।
पराभाण-पराङ्मुख शुद्धशील । उन्नत-मति सुजनोद्धरण-लील ।
गुरुजन-पद-प्रणामित-उत्तमांग । श्रीदेवि-अंब-गर्भोद्भव वांग ।
अन्नय-कौण्डिन्य-गुरु प्रशस्त । 'हंस' व दानोच्छलित-दीर्घ हस्त ।
दुर्व्यसन-सिंह-संपात-शरभ । न दिखा-नाहि का नाम ही भरत ।'[1]

यद्यपि पुष्पदन्त ने उक्त पंक्तियों में आश्रयदाता मन्त्री भरत की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है, फिर भी उदाहृत पंक्तियों की मूल भाव धारा में कवि की धार्मिक वृत्तियाँ मोती की आभा के समान अपनी कांति विकीर्ण कर रही हैं । कारण यह है कि कवि के साहित्य का उद्देश्य धार्मिक है । कवि ने स्वयं लिखा है कि भैरव राजा का स्तुति काव्य बनाने से जो मिथ्यात्व उत्पन्न हुआ था, उसे मिटाने के लिए ही उसने 'महापुराण' की रचना की । उसने धर्म के अनुशासन के आनन्द से भरित 'नाभेय चरित' की रचना की है । उसकी समस्त रचनाएँ जिन भक्ति से उसी तरह प्रेरित हैं जिस तरह तुलसी की राम-भक्ति से । एक जगह मन्त्री भरत से वह कहता है, 'सो तुम्हारी अभ्यर्थना पर मैं जिन-गुण-वर्णन करता हूँ । पर धन के लिए नहीं, अकारण स्नेह के लिए । फिर वह कहता है, जिन पद भक्ति से मेरा कवित्व वैसे ही फूट पड़ता है जैसे मधुमास में आम के बौरों पर कोयल कूक उठती है । कानन में

1- हिन्दी काव्य धारा : पृष्ठ - 179.

भ्रमर गूंजने लगते हैं । और आनन्द से भर उठता है ।'[1] कवि पुष्पदन्त ने प्रताप वर्णन के रूप में भी प्रशस्ति काव्य के उत्तम उदाहरण प्रस्तुत किए हैं । देश-विजय का वर्णन उनकी इसी भावधारा का एक उत्कृष्ट उदाहरण है –

'पल्लव - सैंधव कोंकण कोसल ।
टक्क अहीर कीर खस केरल ।
अंग कलिंग गंग जालंधर ।
वच्छ - यवन-कुरु-गुर्जर - बर्बर ।
द्रविड़ - गौड़ - कर्नाट वराडउ ।
पारस पारियाय पुन्नाडउ ।
सुर सौराष्ट्र विदेह लाटउ ।
कौंग - वंग - मालव - पंचालउ ।
मगध - भोट-भोट - नेपालउ ।
उड्ड - पुंड्र हरिकेस भगालउ ॥'[2]

12वीं शती के जैन कवि पल्ह के कुछ काव्य प्रशस्ति भावना के अमूल्य उदाहरण हैं । जिनदत्त सूरि के दर्शन के महत्व का प्रतिपादन करते हुए पल्ह कवि कहते हैं कि उनके दर्शन से द्रष्टा को निर्मलता, सम्पन्नता, पवित्रता तो मिलती ही है, ऋद्धि -सिद्धियों की भी प्राप्ति होती है । उनके दर्शन से व्यक्ति धर्ममय हो उठता है –

'जिण दिट्ठइ आणंदु चडइ, अइरह सुच्चउ गुणु,
जिण दिट्ठइ ... , तणु निम्मल हुइ पुणु ।
जिण दिट्ठइ सुहु होइ फ्टट, पुव्विकिउ नासइ,
जिण दिट्ठइ हुई रिद्धि, दूरि दालिद्द पणसइ ॥'[3]

जैन काव्य में मुनिराम सिंह का योगदान ऐतिहासिक स्तर पर सर्वमान्य रूप से स्वीकृत है । उनकी रचनाओं में जैन काव्य की सामान्य प्रवृत्तियों की प्रतिलक्षणाएं

1- डा० देवेन्द्रकुमार जैन : अपभ्रंश भाषा और साहित्य : संस्करण - 1 : पृ० - 71.
2- हिन्दी काव्य धारा : आदि पुराण : पृष्ठ - 88.
3- सं० अगरचन्द नाहटा : जैनमरु - गुर्जर कवि और उनकी रचनाएं : पृष्ठ-3.

पाई जाती है । गुरु-महिमा का गान करते हुए कवि मुनिराम सिंह लिखते हैं –

'जो लिहिउ न पूँछेउ कहुँपि जाइ, कहियउ का हुयि न चित्तठाइ ।
अथ गुरु उपदेशे चित्तु वाइ, सो तिनि धारंतोहि कहुँ'पि ठाइ ॥ 166 ॥
दीर्घ जाणिय रूप किय, मनहिं न चारो बेलि ।
तेहि गुरुवहिं हउं शिष्यणी, अन्यहिं करइं न लाल ॥ 174 ॥'[1]

जैन काव्य की मुक्तक परम्परा में कवि अब्बर का योग विशेष उल्लेख है । कवि अब्बर ने कलचुरि नरेश की यशगाथा को काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया है तथा मुक्तकों के माध्यम से प्रशस्ति काव्य की परम्परा के प्रवर्त्तन में महनीय प्रयास किया है । कलचुरि राजा की प्रशंसा में लिखे गए कवि अब्बर के निम्न छन्द विचारणीय हैं –

'चहु गुर्जर हुंजर त्याजि मलो, तव वअर जीवन काज नहीं ।
यदि कोपिय कर्म मोरूयारा, रणे कीहरि, कोवर वज्रधरा ॥
जिने थालावरि देशा दीनेउ, हृदिर उत्तर रज्जा लीनेउ ।
कालिंजा जित्ति कीर्त्ति थापिय, धन आवार्जिय धर्मह अर्पिय ॥'[2]

जिस समाज में भारतीय धर्म क्षेत्र में जैन मत का प्रचार-प्रसार बढ़ रहा था, राजतन्त्रीय व्यवस्था का भी व्यापक प्रचार था । अनेक राजाओं के द्वारा विशेष कर गुजरात के नरेशों के आश्रय में जैन धर्म का विकास हो रहा था । इन सामन्तों एवं राजाओं की प्रशंसा में भी जैन कवियों ने कविताएं लिखी हैं । हेमचन्द्र सूरि ने इसी प्रकार राज प्रशंसा में अपने 'छन्दानुशेष' में जो छन्द लिखे हैं, वे प्रशस्ति काव्य के आदर्श छन्द माने जा सकते हैं –

'क्षीरसमुद्रेहिं लवण-जलधि; दुग्धलय कुमुदावलि ।
कालिंदी धुरा - सिन्धु जलेहिं मधु मथन धरिन ॥
कैलाशेहिं सदृश उदुपुर की अंजन गिरि ।
यह लय जग श्री धवलिउ प्रभु का पाण्डुर नम ॥ 13 ॥'[3]

1- पाहुड - दोहा : छन्द संख्या 166 एवं 174.
2- अब्बर ; स्फुट कविताएं : छन्द संख्या - 140 तथा 128.
3- छन्दानुशेष : छन्द संख्या - 13.

इसी क्रम में कवि आम भट्ट की 'उपदेश तरंगिणी' में पाए जाने वाले वे छन्द भी उदाहृत किए जा रहे हैं जिनमें महाराज सिद्धराज एवं कुमार पाल की प्रशंसा के गीत गाए गए हैं । प्रशस्ति की इस पावन परम्परा में आम भट्ठ की वाणी का विलास अपनी अप्रतिम भावधारा के कारण आदिकालीन प्रशस्ति काव्य की परम्परा में एक विचित्र कड़ी के रूप में अंगीकारी जा सकती है । कवि के छन्दों का अवलोकन करने पर यह स्वत: स्पष्ट हो जाता है कि कवि 'आमभट्ट' में एक सच्चे प्रशस्ति गायक के गरिमावान गुण विद्यमान थे । उदाहरण स्वरूप नीचे के छन्द द्रष्टव्य हैं –

सिद्धराज की प्रशंसा –

'चरिगयंद रगमगिय चन्द कर मिलिय दिवाकर,
दीहेय महि खलियइ गिर जलजवहि सागर ।
सुभट कोटि [illegible] - [illegible] दुग्म [illegible],
[illegible] [illegible] [illegible] पुहुगि संग प्रलय पलहिय ॥ 202 ॥'

कुमारपाल की प्रशंसा –

'रे राखिलगु जीव वरउ रणे मदकगल मारै ।
नपिउ अनर्गल नीर [illegible] राउई हर्षारै ।
कुमारपाल [illegible] हूवो पीहै सपूक आथ [illegible] ।
जो जिनधर्म न मानिहै, तेहहिं चांडहुताम तिमि ॥ 204 ॥'[1]

कवि विद्याधर द्वारा महाराज जयचन्द की प्रशंसा में वीर रस प्रधान जो मुक्तक छन्द लिखे गए हैं, वे प्रशस्ति काव्य की दृष्टि से अपना महत्त्व रखते हैं । जयचन्द की कीर्ति को [illegible] करते हुए भट्ट विद्याधर लिखते हैं :-

'चंदा कुंदा काशा हारा हीरा त्रिलोचना कैलाशा ।
जैला जेता श्वेता तैला काशोश जीतिया तव कीर्ति ॥ 77 ॥
विपुल [illegible] रणें अचल, परिहरिय हय गज अल ।
हलहलिय मलय नृपति, याहु यश त्रिभुवन पिवई ।

1- उपदेश तरंगिणी : छन्द संख्या 202 तथा 204.

वनरासि नरपति हुध्दिय सकल उपरियश परिया ॥ 87 ॥'[1]

स्तुति मूलक प्रशस्ति की जो अनुगूंज जैन काव्य में निदर्शित की गयी है, उसमें शालिभद्र सूरि का स्वर निराला ही रहा । इस कवि ने यश मूलक प्रशस्तिगान में भी अपनी रागिनी मुक्त भाव से टेरी है जिसका एक आदर्श सामने लाया जा रहा है । सिंहासनारूढ़ सामन्त की प्रशंसा करते हुए कवि शालिभद्र सूरि लिखते हैं :-

'पैठें उपुरई प्रदेश, दूत वधुतउ राज घरें ।
स्वयं प्रातिहार प्रवेश, पाख्य नखरपद नमें ॥ 68 ॥
चउपी माणिक थम्म माहि बईठउ बाहुबलि ।
रवे जेठी रंभ,-चमर धारि चाले चमर ॥ 69 ॥'[2]

बाहुबलि की प्रशंसा करते हुए कवि शालिभद्र सूरि कहते हैं कि उसे दूत ने देखा कि वह मणि निर्मित चौकी पर बैठा हुआ है और रंभा के समान सुन्दरी चमर धारिणी चमर डुला रही है । जैन काव्य में कवि 'लक्खण' ने भी राजा आल्हमल्ल, रानी ईश्वर देवी तथा मन्त्री कान्हउ की प्रशंसा में प्रशस्ति काव्य की स्वस्थ स्थिति को स्थापित किया है । नृपति आल्हमल्ल दरिद्रता के सागर को तारने में समर्थ हैं । समस्त मण्डल में, जनबल, नीति आदि सामर्थ्य के विचार से उसके समान कोई नहीं है । वे अपने कुलकुमुदिनियों के चन्द्रमा हैं, वे गुणों से, रत्नों से, आभरणों से भूषित हैं । अपराध के बादलों को उड़ाने में वे प्रचण्ड पवन के समान हैं । वे तपन निवारण में समर्थ हैं । कवि लक्खण कहते हैं :-

'तहं नरपति आल्हमल्ल स्व । दारिद्रयसमुद्रोत्तारण से सुत्तु ।
उद्भासित परमंडल देशित मंडल । पाथ कुसुम संकाश यशु ।
जन-बल सामर्थ्य नीतिन्यायें । कवमराय उपामियें तसु ।
निज कुलकैरवचन्द्रकरपांग । गुण रत्नाभरण विभूषितांग ।
अपराध बलाहक प्रलयपवन । मथमार्ग गप प्रतिदन्त तपन ॥'[3]

इसी क्रम में लक्खण द्वारा पटरानी ईश्वर देवी की प्रशंसा भी यश के

1- हिन्दी काव्य धारा : पृष्ठ - 397.
2- बाहुबलि रास : छन्द संख्या 68 तथा 69.
3- अणुवयण पईव : हिन्दी काव्य धारा : पृष्ठ 447.

साथ रचात्मक प्रशस्ति के स्वर को ही अनुगुंजित करती है । अन्तःपुर की प्रधान पटरानी ईश्वर देवी अपने पति के सदा अनुकूल रहती है ।स्पष्ट रुप से अलौकिक प्रशस्ति को ही प्रधानता वाले जैन काव्य में इसी प्रकार की एकाधिक अन्य कृतियाँ भी हैं जिनमें लौकिक नरेशों - रानियों आदि की प्रशस्ति का निरुपण किया गया है । किन्तु जैन काव्य की प्रशस्ति परम्परा की प्रमुख धारा देवी कोटि की ही है । कवि वृन्द द्वारा की गयी 'दशावतार स्तुति' में दैवि कोटि का यश-वर्णन पाया जाता है । कवि ने वाराह, राम, कृष्ण आदि के कृत्यों का [illegible] करते हुए दशावतारी भगवान की यश-कथा का वर्णन किया है –

'जेहिं वेद धरिज्जै महितल लिज्जै,
पीठहिं दन्तहिं ठदं धरा ।
रिपु [illegible] विदारे [illegible] सत्रु धारे,
[illegible] [illegible] राय [illegible] धरा ॥
[illegible] क्षत्रियतापे [illegible] भुज [illegible] ।
[illegible] फेरि [illegible] करा ।
करणा प्रकटे [illegible] विहसे,
सो देउ नारायण तुम्ह वरा ॥'[1]

यद्यपि जैन काव्य साधनात्मक काव्य के अन्तर्गत एक महत्वपूर्ण धारा के रुप में स्वीकृत है और इस कोटि की तीनों धाराओं में प्रधान स्वर प्रशस्ति के अलौकिक पक्ष का ही है किन्तु फिर भी साधना रत इन कवियों ने लौकिक लगाव के साथ राजाओं, सामन्तों की सम्पदा, रुप एवं यश विषयक प्रशस्ति का मुक्त कण्ठ से गान किया है । हरि ब्रह्म ने लक्ष्मण [illegible] सामान अपनी स्फुट रचनाओं में लौकिक [illegible] चन्द्रेश्वर की यश मूलक प्रशस्ति 'दृष्टान्त माला' के माध्यम से प्रस्तुत किया है । [illegible] यह छन्द जो नीचे उद्धृत किया जा रहा है, सामन्तीय कोटि के काव्य की सर्वोत्कृष्ट प्रशस्ति रचना है –

'यथा शरद - शशि - बिंब, यथा [illegible] - हार - हंस [illegible] ।
यथा फुल्ल - सित - कमल, यथा श्री खंड [illegible] ।

---

1. हिन्दी काव्य धारा : पृष्ठ - 559.

यथा गंग-कल्लोल, यथा रोषाणित रुसौ ।
यथा दुग्धवर-शुद्ध-फेन फॅमाव तलपै ।
प्रियपाद प्रमोद दृष्टि पुनि, निभृत हसै जिमि लक्षणिजन ।
वर मंत्रि चंडेश्वर कीर्ति तव, तत्र पेखु परिभ्रमइ भन ॥'[1]

इसी परम्परा में अम्ब देव सूरि द्वारा लिखे गए कतिपय छन्दों में सेठ समर सिंह, बादशाह अलाउद्दीन और मीर अलप खाँ की प्रशंसा भी उल्लेखनीय है ।

सेठ समर सिंह की प्रशंसा :-

'जिन दिनें दिन दखाउ, समर सिंह जिन धर्म - वणि ।
तसु गुण करउँ उजोउ, जिमि अँधारैं फटिक मणि ॥
सखी अमोयतनीय: जिन वखाइ मरू मण्डलहिं ।
किउ कृतयुग अवतार, कलियुग जीतिउ बाहुबल ॥'[2]

बादशाह अलाउद्दीन और मीर अलप खाँ की प्रशंसा :-

'तहं आछे भूपतिहं धुव धतखंड प्रशस्ती ।
दिक्षर्म विधान करेउ पीइय निज हस्ते ॥
पादशाहि सुरतान भीडु तहं राय करेई ।
अलपखान हिंदु वहं लोग धनमान जो देई ॥'[3]

लौकिक प्रशस्ति के इस प्रवाह में कवि 'जज्जल' द्वारा लिखित 'राना हम्मीर की प्रशंसा' में लिखे गए छन्द की भाव सम्पदा में भी यशमूलक प्रशस्ति का अच्छा स्वरूप देखने को मिलता है :-

'मुचहिं सुन्दरि ? अपीहं हँसियाउ सुमुजि खडगाई मे ।
काटिय मिच्छ शरीरहं पेखिहं वदनह तुम्ह ध्रुव हम्मीरो ॥

1- हिन्दी काव्य धारा : पृष्ठ - 467.
2- वही : पृष्ठ - 467.
3- वही : पृष्ठ - 469.

पग भर दरु भरु धरणि तरणि रह धुल्लिय झंपिय ।
कमठ पीठ टापरिय मेरु मन्दर शिर कंपिय ॥
क्रोधि चलिय हम्मीर वीर गज यूथ संयुक्ते ।
कियउ कष्ट 'हाक्रंद' मूर्च्छि म्लेच्छन के पुत्ते ॥'[1]

जैन काव्य का रचना-परिवेश अपनी आन्तर चेतना की व्यंजना में लौकिक यश-गान के लिए भी विवश था । कारण यह था कि ये कवि जिन धर्म के सिद्धान्त एवं साधना का प्रचार-प्रसार कर रहे थे, उसे कतिपय राजाओं एवं सामन्तों का सम्बल भी मिल रहा था । अनेकों नरेश जैन धर्म में दीक्षित थे । उनका राज्य-धर्म ही जैन-धर्म था । यही कारण है कि दैवी एवं लौकिक दोनों दृष्टियों से प्रशस्ति का यश-मूलक स्वाद ही नहीं, सभी प्रवृत्तियाँ प्रभावित थीं । ऊपर हमने दैवी कोटि के यशगान वाले प्रशस्ति के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं । इसी क्रम में कतिपय रास काव्यों का अवदान भी रेखांकित किया जा रहा है । कवि विनयप्रभ द्वारा लिखित 'गौतम स्वामी रास' जिनेश्वर का यशगान इस दृष्टि से उल्लेख्य है –

'वीर जिणेसर चरण कमल कमला कयवासो,
पणमवि पभणिसु सामि साल गोतम गुरु रासो;
मणु तणु वयण एकंत करवि निसुणो भो भविया,
जिम निवसे तुम देह गेह गुण गुण गह गहिया ॥
जंबुदीव सिरिभरहखित्त खोणीतल मंडण,
मगधदेस सेणीय नरेस रीउदल बल खंडण;
धणवर गुब्बर नाम ग्राम जहिं गुण गण सज्जा,
विप्प वसे वसुभूइ तथ्य तसु पुहवी भज्जा ॥'[2]

देवप्रभ की कृति 'कुमार पाल रास' भी अलौकिक कोटि की यश मूलक प्रशस्ति की परम्परा के विचार से उल्लेखनीय कृति है । कुमार पाल के प्रताप एवं यश का वर्णन परम्परित शैली में करते हुए कवि देवप्रभ ने सामन्तीय परिवेश को ही साकार कर दिया है । इस प्रकार की भाव-धारा से संपृक्त एक नहीं अनेक छन्द

- -

1- हिन्दी काव्य धारा : पृष्ठ - 452.
2- आदिकाल की प्रामाणिक रचनाएँ : पृष्ठ - 125.

इस रास काव्य में उपलब्ध हैं ।[1] भगवान के नाम की महिमा का गान करने वाले कई एक छन्द स्वयम्भू छन्द में पाए जाते हैं ।[2]

जैन कवियों द्वारा प्रणीत विभिन्न कोटियों की इन अनेक रचनाओं का अनुशीलन करने से जो परिणाम सामने आए हैं, उनके प्रकाश में यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि इस काव्य में यशमूलक प्रशस्ति का स्वर भी प्रबलतम है । हाँ, इस यशगान की स्वर-साधना में दो प्रकार के राग अनुगुंजित हैं -- एक है दैवी कोटि अथवा अलौकिक वर्ग का और दूसरा लौकिक वर्ग का है । आगे इस कोटि के काव्य के सम्पदा मूलक एवं वैभव वर्णन वाली प्रशस्ति के स्वरूप पर विचार किया जाएगा ।

सम्पदा एवं वैभव मूलक प्रशस्ति :-
======================

'सत्यपुरीय महावीर उत्साह' आदिकाल की जैन परम्परावाली काव्य-कृतियों में प्राचीनतम मानी गयी है । यह 11वीं शती की रचना है । यह रचना एक उल्लास प्रधान रचना है । इसे स्तुति या गीत भी कहा जा सकता है । यद्यपि गीत-मूलक काव्य की रचना इस काल में अधीर मात्र में हुई है फिर भी, इस रचना की भांति 'उत्साह' संज्ञक रचनाओं का लगभग अभाव सा ही है । इसकी अनुभूति प्रधान कथा का सीधा सम्बन्ध ऐतिहासिक समन्वय से है । प्रस्तुत कृति का नाम उत्साह है । उत्साह वीर रस का स्थायी भाव है । अतः उसकी निष्पत्ति किसी उल्लास या आल्हादक महोत्सव अथवा किसी अन्य घटना विशेष के कारण ही सकती है । यह भी सम्भव है कि किसी चामत्कारिक दैवी घटना, भक्ति का चरम आनन्द या उद्वेग होने पर भी कवि के ये हृदयोद्गार फूट निकले हों । यों परम्परा का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्याश्रित जितने भी कवि होते हैं, वे राजा की स्तुति, प्रशस्ति या स्तवन स्वरूप गीत वर्णन किया करते थे तथा राजा की विजय या पराजय के पश्चात् पुनः राज्य प्राप्ति के अवसर पर हर्षोल्लास एवं असीमित आनन्द में स्निग्ध स्तुति मूलक रचनाओं का निर्माण किया करते थे ।[3] स्पष्ट

1- कुमारपाल रास : छन्द संख्या 40-43 तक ।
2- स्वयम्भू छन्द : छन्द संख्या 41 से 45 तक ।
3- आदिकालीन हिन्दी साहित्य - शोध : पृष्ठ 73-74.

है कि ऐसे अवसरों पर सम्पदा एवं वैभव का गान एक अनिवार्य औपचारिकता होती थी । परवर्ती जैन काव्यों में इस प्रकार की सम्पदा एवं वैभव के वर्णन की रूढ़ि सी चल पड़ी थी । यही कारण है कि प्रायः सभी प्रकार के जैन काव्यों में सम्पदा गान एवं वैभव वर्णन के प्रसंग आए हैं । हाँ आभास यह अवश्य होता है कि यह सम्पदा वर्णन का ढंग भी आलम्बन गत भेद से दो प्रकार का हो गया है -- दैवी एवं लौकिक । विवेच्य यह है कि इस कोटि के काव्यों में इसकी स्थिति एवं स्वरूप क्या है ।

पिछले अध्यायों में अनेकधा यह स्पष्ट किया जा चुका है कि स्वयम्भू जैन कवियों में सबसे ज्यादा कवि थे । इनकी कृतियों में अनेक स्थानों पर इस प्रकार के वर्णन आए हैं जिन्हें हम सम्पदा-मूलक प्रशस्ति का उत्तम उदाहरण मान सकें । नगर - वर्णन के अन्तर्गत राजगृह की प्रशस्ति का गान करते हुए स्वयम्भू लिखते हैं --

'तहँ पट्टननामा राजगृह, धन कनक समिद्धउ ।
जनु पुहुमिएँ नव यौवन, श्री शेखर आदेशितउ ॥
जो गोपुर सो प्राकारवन्त । हँसै इव मुक्ताफल धवल दन्त ।
नाचत 'व मस्त-धुत-ध्वज पराग । धाराइट पट्टलोगगन भाग ॥
सुलाग पिट्ठयेउ देव्हन-शेखर । कवण इव पारावत शब्द-गहिर ॥
दप्पुदंत इव मदनपिछल गजेहिं । उद्दन्त इव तुरगेहिं चंचलेहिं ॥'[1]

(पउम चरिउ, रामायण से)

इसी 'पउम चरिउ रामायण' के अन्तर्गत कवि स्वयम्भू ने अयोध्या के रनिवास का वर्णन करते हुए राजसम्पदा की जो झाँकी उद्घाटित की है, वह सम्पदा मूलक प्रशस्ति काव्य का एक प्रतिमान है । सच्चे अर्थों में प्रशस्ति काव्य के लोकपक्षीय धारा में सम्पदा-निरूपण की यही कालीन पद्धति ग्राह्य भी हो सकती थी, जिसको स्वयम्भू ने अपनाया है । वह कहता है :-

'श्री चरण चलग्गा कोमला । जनु - जनु अभिनव रक्तोत्पला ।
जो ऊरु परस्पर-भिन्न-तेज । जनु-जनु वर रंभा खंभ एह ।

- -

1- हिन्दी काव्य धारा : पृष्ठ - 35.

को कनक थोरि कीलय विशाल । जनु-जनु अहि रतन निधान-पाल ॥
को त्रिवली अंतरु परिवाश्या । जनु-जनु काम पुरिहिं खाइयाँ ॥
को रोमावलि घन कृष्ण एह । जनु-जनु मदनानल धुम लेव ॥
को नव नयु जनु-जनु कनक कलश । को करु जनु-जनु प्रारोह सरिस ॥
को आलंपित कर तल चलंति । जनु-जनु अशोक पल्लव फुलंति ॥
को आनन जनु-जनु चन्द्र बिंब । को अधराउ जनु-जनु पक्व बिंब ॥
को दसना पाडिउ सम्मौक्तिकाउ । जनु-जनु माणिक वलिदहीं भाउ ॥
को गंठ्यार जनु दान्ति दान । को लोचन जनु-जनु काम-बाण ॥
को भौंह एह परिस्थिताउ । जनु-जनु मनमथ धनु यष्टि पाउ ॥
को कर्ण कुण्डला भरण एह । जनु-जनु रवि शशि विसुटिल तेज ॥
को भालउ, जनु-जनु ययधरार्ध । को शिर जनु-जनु अलि कुल निबद्ध ॥'[1]

पुष्पदन्त स्वयम्भू के ही समान महाकवियों की परम्परा में अपना अप्रतिम स्थान रखते हैं । कवि पुष्पदन्त ने 'णायकुमार चरिउ', 'जसहर चरिउ' और 'आदि पुराण' जैसे महनीय काव्यों का प्रणयन करके न केवल जैन अपितु हिन्दी काव्य की आधिकारिक उपलब्धियों को गरिमावान बनाया है । जहाँ तक प्रशस्ति और उसके विभिन्न स्वरूपों का प्रश्न है, पुष्पदन्त की रचनाओं में उनके उदाहरण अनेक स्थलों पर उपलब्ध होते हैं । 'णाय कुमार चरिउ' में मगध भूमि का वर्णन करते हुए पुष्पदन्त कहते हैं कि उस प्रदेश में कामधेनु गायें रहती हैं, स्थान-स्थान पर दूध की धारा बहती है, जन्मोषण के लिए सर्वत्र शालायें बनी हुई हैं । स्वर्ण और रत्नों से जटित राजगृह का दुर्ग है, जहाँ मगध नरेश सुरपति के समान निवास करते हैं —

'जहँ कामधेनु-सम गोधनाइँ । घर-दूधी स्नेहारोधनाइँ ।
जहँ र कल-जोय-मृत पोषणाइँ । धन-कण-कणि शालहंकर्षणाइ ॥
x x x x x x x x
तहँ पुखर णामि रायगृह, कनक-रतन-कोटिहिं घटेउ ।
'अलिवंद-धारंतह सुरपतिहँ, जनु सुन नगर गगन पडेउ ॥'[2]

1- रामायण : 69/21.
2- णायकुमार चरिउ : पृष्ठ - 6.

मगध-भूमि की सम्पदा मूलक प्रशस्ति के इस तारतम्य में पुष्पदन्त के ही द्वारा अवधेय भूमि वर्णन का प्रसंग भी सन्नद्ध कर देना आवश्यक प्रतीत होता है । 'जसहर चरिउ' के अन्तर्गत माधुर्य गुण सम्पन्न शब्दावली के माध्यम से पुष्पदन्त ने भू-श्री का जो चित्र अंकित किया है वह सम्पदा मूलक प्रशस्ति का सामयिक परिवेश में उत्तम उदाहरण माना जासकता है ।

'जहँ कमभर प्रनमी पक्कशील । जहँ दीसे शतदल-सदल शालि ।
जहँ मंजरि कीर पंक्ती चुनै । गृहपति - सुताहिँ प्रतिवचन भनै ।
कोकरन-राज-रंजित-मनेहिँ । पथ पद न दान पंथिक - जनेहिँ ।
जहँ दीय कर्ण वने मृग हुलेहिँ । गोपाल-गीत -रंजित-मनेहिँ ।'[1]

जैन काव्य में प्रतिष्ठित सम्पदा एवं वैभव के विषय भी अनेक रूपात्मक हैं । कारण यह है कि यह काव्य किसी स्थान या प्रान्त विशेष तक ही सीमित रहा हो, ऐसी बात नहीं है । देश के सभी प्रमुख भागों में, एकाधिक राज-दरबारों में, अनेक भौगोलिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं वाले जन समुदाय में इस काव्य के सर्जना करने वाले साहित्यकार भ्रमण करते रहे । 'जैन आचार्यों, मुनियों, यतियों एवं श्रावकों ने भारत के कोने-कोने में संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषा के साहित्य की रचना की है और प्राचीन साहित्य को लिपिबद्ध करके उसे अपने भण्डारों में सुरक्षित किया है । लोक भाषा के साहित्य को जितना प्रोत्साहन जैन धर्मावलम्बियों - द्वारा मिला, उतना अन्य किसी वर्ग-द्वारा नहीं । एक राजस्थान ही नहीं वरन् सभी प्रान्तों में जहां जैन धर्म का प्रचार प्राचीन काल से होता चला आ रहा है, जैनियों ने वहां की भाषा के भण्डार को अपनी रचनाओं से अक्षय भरा है । राजस्थानी और हिन्दी के तो प्राचीनतम उदाहरण ही जैन ग्रन्थों में मिलते हैं और जब तक जैन भाण्डारों का संपूर्ण सर्वेक्षण नहीं होगा, तब तक हिन्दी और राजस्थानी भाषाओं का पूरा इतिहास नहीं तैयार हो सकता ।[2] कहने का आशय यह कि जैन काव्य विभिन्न अवस्थाओं -परिस्थियों का काव्य है । अतः इसमें दुर्लभ सम्पदा एवं वैभव मूलक स्वर भी अनेक रूपात्मक ही पाया जाता है । अभी हमने पुष्पदन्त द्वारा वर्णित भू श्री के मनोरम चित्रों के माध्यम

1- जसहर चरिउ : पृष्ठ 4 - 5.
2- राजस्थानी साहित्य और संस्कृति : पृष्ठ - 38.

से यह स्पष्ट करना चाहा है कि इन कवियों की धार्मिक-चेतना में लोकसम्पदा का तिरस्कार कहीं भी कदापि नहीं देखा जाता है । दरबार की विभा की मूल्यवान झाँकी उपस्थित करते हुए कवि पुष्पदन्त लिखते हैं –

'भूमि गउ गनविषण्ण । कनकमय - रतन -विस्तार -निषण्ण ।
दी पासेहि चमरा मुहु पडंति । बहु-दुःख सहसैं जनु पडंति ।
सभ-मंझे हुआ-वामनाइ । नाचंते आते कोटा बनाइ ।
वीणा-वंशिहि गीतहि धनंति । वैतालिक पंचवे सुवंति ।।'[1]

इसी प्रकार सामन्तों के भोग-भाव का जो वर्णन पुष्पदन्त की रचनाओं में पाया जाता है उससे सामन्तीय सम्पदा का भी एक विवरण सामने समुपस्थित होता है –

'काम भोग-सुख-रस-वसहु । तेहि दसुमतिहि किमि वर्णिज्जै ।
जो जो दिस्से कहु मने । सो सो एवलहु खणे उपज्जै ।।
यक्षकंकी (?) दूढ़ दक्खभाऐगेनें । मालती-मालिका कुंकुमालि पनें ।
उंच जो मंचजी धारुशय्यातलं । आवरोहरि कुसुम ससनाई तलं ।।'[2]

'अणुवयरयण पईव' कार लक्ष्मण ने सामन्त समाज की विभा-मण्डित स्थिति का अनावरण किया है । उनके द्वारा लिखित 'राजधानी वर्णन' प्रसंग के अन्तर्गत सम्पदा मूलक प्रशस्ति का अच्छा उदाहरण पाया जाता है –

'इहं जमुना नदी उत्तर तटत्थ ।
महनगरि राय भा (ह) पसत्थ ।
गिन-कण-कंचन-धन-सुरि समृद्ध ।
धनोन्नत धर-जनश्रेष्ठि - श्रद्ध ।।
किर्मीर कर्म निर्मित रमण सउज्जल सन्तोरण विविध वर्ण ।
पांडुर प्राकार उन्नति समेत जहं रहे निरन्तर श्री निकेत ।।'[3]

1- जसहर चरिउ : पृष्ठ - 32.
2- आदि पुराण : पृष्ठ - 407.
3- हिन्दी काव्य धारा : पृष्ठ - 445.

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने अपनी 'काव्य-धारा' में जैन काव्य प्रणेताओं में कुछ अज्ञात नामा कवियों की रचनाएं भी उदाहृत की हैं । इनकी कृतियों में भी प्रशस्ति के विभिन्न रूपों के दर्शन होते हैं । जगड़ू साहु के दान की प्रशंसा में लिखा गया अज्ञात कवि का यह छन्द विशेष रूप से रेखांकित करने योग्य है –

'ना कापाली मन्दियरा, ते आगिल्ला चारि ।
दान शाल जगड़ू कैरी, दोरी पुहवि मंझारि ॥ ।18 ॥
वीसलदे विरुदं करी, जगडू कहावे जीव ।
तु (ती) परखे काल से, एह पारो से थीव ॥ ।19 ॥'[1]

पुष्पदन्त का काव्य क्षेत्र जैन कवियों में सर्वाधिक व्यापक रहा । कृष्ण राज के स्कन्धावार का वर्णन करते हुए पुष्प कवि लिखते हैं कि –

'उद्बद्ध जूट भू भंग भीष । तोडेप्पियउ चोलहं वेर शीर्ष ॥
भुवन एक राम राजाधिराज । जहं अछि तुडिंग महानुभाव ॥
सो वेन दत्त-धनन्द-नव-प्रवर । महि परिभ्रमंत से पाडिगार ॥
अवहीरिय खल-जन-गुण-महंत । दियहेहिं नहं आयेउ पुष्पदन्त ॥'[2]

कविवर राजसिंह का 'जिणदत्त चरित' जैन चरित काव्यों में एक महत्वपूर्ण कृति है । इस कृति में वर्णित कथा के अन्तर्गत आए हुए नगर वर्णन प्रसंग के मध्य कवि राजसिंह ने 'रघुनपुर नगर' की सम्पदा एवं उसके वैभव का अनावरण किया है । प्रशस्ति भाव से लिखे गए इस प्रसंग के अन्तर्गत सम्पदा मूलक स्वर पाया जाता है । राजसिंह लिखते हैं –

'तहिं अणेक विज्जावण्उ, अणेक सिरो राणि भाउ ।
पं छुरेंद्र जो गाणिउ सुणइं, गरुवणरेन्द्र देवउ छुवरइं ॥
साहण वाहण गुणउ अंतु, कहरि राउ मेहणि विलसंतु ।
अंतिउर चउरासी राणि, तिन्ह के नाम रहु कवि जान ॥'[3]

1- उपदेश तरंगिणी : पृष्ठ 41-42.
2- हिन्दी काव्य धारा : पृष्ठ - 177.
3- जिणदत्त चरित : छन्द संख्या 268 - 269.

अर्थात् वहाँ पर अशोक नाम का विद्याधर राजा है और उसकी रानी का नाम अशोक श्री है । मानो इन्द्र ने ही वहाँ स्वर्ग की स्थापना की हो तथा जिसकी सेवा बड़े-बड़े नरेन्द्र करते हैं । उसके साधन वाहनादि का अन्त न जानो । इस प्रकार वह राज्य एवं पृथ्वी का भोग करता है । उसके अन्तःपुर में 84 रानियाँ हैं, जिनके नाम यह कवि कहता है, मैं जानता हूँ । 'भारतेश्वर बाहुबलि' की सम्पदा के गायक शालिभद्र सूरि ने अपने 'रास' में सम्पदा मूलक प्रशस्ति का जो विधान किया है वह रास काव्यों में पाई जाने वाली इस प्रकार की प्रवृत्ति का प्रथम प्रयास है । इस काव्य की वे पंक्तियाँ जिनमें सम्पदा मूलक प्रशस्ति पाई जाती है, नीचे उद्धृत की जा रही हैं –

'हीयव पभणिसु रासह छंदिहि,
तंजन मनहर मन आणंदिहि,
भाविहि भवीयण ? संभलेउ ॥ 3 ॥
जंबू दीवि उववाजरि नयरी, धणि, कणि, कंचणि, रमणिहि पवरी;
अवर पवर किरि अमर वये ॥ 4 ॥
काशराजलीहि रिसहजिणेसर, पावतिमिर भयहरण दिणेसर;
तेह तणि उत्तबिय यएए ॥ 5 ॥
दान दियइ जिणवर संवत्सर, निदयपि रत्तं अइइ संजयमर;
धुरअद्धरारि देवीउ ए ॥ 11 ॥
चलीय गयवर, चलीय गयवर गटीय गज्जंत,
हूं पलाट रोस भरि, हिणहिणंत हय थट्ट हल्लीय ।
रहभय भरि टलटलीय मेरु, सेसमणि मउड झिल्लीय ।
सिउं मरु देवि... रीय, कुंजरि चडिउ नरिंद
सामी ... सुंदरि ..., वीदेय पदम जिणंद ॥ 16 ॥
तु बाहू बलि जंपइ, कारि वयणम कत्ति ।
भरहि ... भय कंपइ, जं जग हुं ... ॥ 85 ॥[1]

1- भारतेश्वर बाहुबलि रास : छन्द संख्या - 3, 4, 5, 11, 16, 85.

वेल्हण श्वेताम्बर की रचना 'गय सुकुमाल रास' भी जैन काव्य में महनीय कृति मानी जाती है । इसमें गज सुकुमाल का चरित्र वर्णित है । कमल धारिणी श्रुत देवी को प्रणाम करके कवि रास लिखना प्रारम्भ करता है । स्वर्ण एवं रत्नों से सजी द्वारावती नगरी का कवि ने वर्णन किया है । इस नगरी में इन्द्र के समान शोभावान कृष्ण नरेन्द्र राज्य करते हैं । इन्होंने नराधिप कंस का संहार किया है । उनके पिता वसुदेव तथा माता देवकी हैं । मुनि नेमि कुमार के आशीष से देवकी को पुत्र उत्पन्न होता है, जिसका नाम गज सुकुमाल रखा जाता है ।[1] इस काव्य में जैनागमों के अनुसार गज सुकुमाल का वर्णन है, जिसमें भक्तों या साधकों को आकृष्ट करने के विचार से उनकी सम्पदा तथा उनके वैभव का वर्णन किया जाता है । सम्पदा मूलक प्रशस्ति के इस संक्षिप्त विवेचना के बाद हम रूपात्मक कोटि की प्रशस्ति का समाकलन करना चाहेंगे । प्रशस्ति की भावधारा को उजागर करने के विचार से रूप गत महिमा के गान की भी अपनी विशिष्ट महिमा है । अतः आगे अब इसी पक्ष पर विचार करते हुए जैन काव्य की विभिन्न कृतियों का मूल्यांकन किया जाएगा ।

रूपात्मक प्रशस्ति :-

यशगान, स्तुति एवं समाराधना उसी की की जाती है जो प्रिय एवं शुभेच्छु होता है । लोक जीवन में राजा तथा पारलौकिक विचार में ईश्वर अथवा दैवी शक्ति को मनुष्य अपने हित साधक एवं शुभेच्छु प्रिय के रूप में स्वीकारता आया है । यही कारण है कि काव्य स्तर पर इन्हीं दो कोटि के आलम्बनों का यशगान होता रहा है । प्रिय के यश एवं आराध्य की आराधना के साथ ही साथ उसकी सुन्दरता का मुक्त कण्ठ से गान भी बहुत सहज प्रवृत्ति रही है । कवियों ने इसीलिए देवताओं की वन्दना में, स्तोत्र काव्य में आराध्य-आराध्या के रूप का वर्णन करना एक अनिवार्य धर्म माना है । सामन्तीय काव्यों में यही प्रवृत्ति राजा-रानियों के प्रति रूढ़िप्रियता के साथ अतिशयता पाई जाती है । जैन कवियों ने अपनी प्रशस्ति भावना के आलम्बन दैवी एवं लौकिक पात्र को ही देखा है । इस काव्य में इसीलिए दैवी शक्तियों के प्रतीक देवों तथा भौतिक शक्ति स्रोत राजासामन्तों के रूप का व्यवस्थित वर्णन किया है ।

1- रास एवं रासान्वयी काव्य : पृष्ठ - 115।

महाकवि स्वयम्भू ने अपनी रामायण में आराध्य राम की आराध्य पत्नी सीता देवी के रूप की प्रशंसा करते हुए जो चित्र प्रस्तुत किया है उसे हम श्लाघ्य कोटि की प्रशस्ति के रूप में ही ग्रहण करते हैं :-

'हरि प्रहरंत प्रहसिउ जब्बे । जानकि नयन कटक्खेउं तब्बे ॥
सुकवि सुकाव्य सुगंधि सीधिका । सुपद सुवचन सुशब्द सुबंधिका ॥
थिर क... गमन गति मंथर । कृश मंझरि नितंब सुविस्तर ॥
रोमावलि मकर धरती सी । जनु पिपीलिका पंक्ति पिलोनी ॥
अभिनवहुड-पिंड पीन स्तन । जनुमदकल-उरुखंभ-निजोतन ॥
राजे वदनकमल अवलंबिउ । जनु मानस सर विकसिउ पंकज ॥'[1]

स्वयम्भू ने सीता की शरीरगत सुषमा एवं गठनगत लावण्य का जो चित्र प्रस्तुत किया है उसके पीछे उनकी चित्त में विद्यमान सीता की महिमा का बोध ही मुख्य है । 'आदि पुराण' के अन्तर्गत पुष्पदन्त ने नारीसौन्दर्य का निरूपण किया है । इस सौन्दर्यनिरूपण में विविध चित्र चित्रित किया है । मुख मण्डल के दोनों ओर रवि-शशि के समान कर्णाभरण दोलायमान होकर अपनी आभा विकीर्ण कर रहा है । प्रफुल्लित कमल मुख पर डोल रही काली घुँघराली अलकें ऐसी लगती हैं मानों कमल पर भ्रमर मँडरा रहे हों -

'निशि दिन रवि शशि गगने लक्खिउ ।
दोउ गंड तले प्रतिबिंबिउ ।
जो जो दिसे ... मने, सो सो सहसहु अणे संपज्जे ॥
यद्यपि को दृढ़ पक्षपालिंगन । मालती मालिका कुसुमालिंगन ॥
कर्ण योम दयो ... वक्षातल ।
अवरोहरि ... स्तनांचल ॥'[2]

जैन कथा काव्यों की महिमा अपनी विशिष्ट स्थिति के कारण सर्वमान्य है । 'भविष्यदत्त कथा' (भविसयत्त कहा) में नारीसौन्दर्य का वर्णन करते हुए

1- रामायण : 38/3.,
2- आदि पुराण :' पृष्ठ - 470.

कवि धनपाल ने प्रशस्ति के रचनात्मकपक्ष को परिपोष प्रदान किया है । रूप एवं उसके प्रभाव का इतना रूमानी चित्र आज के रोमाण्टिक काव्य में भी कम ही उपलब्ध है । कवि धनपाल की कृति से एक उदाहरण आदर्श के रूप में नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है –

'मुख मारुतें मलय वन राजि – व ।
सिंहलदीपे रतन विख्याति – व ।
सोहे दरपन प्रोढं करंतो ।
चिकुर तरंग भंग पिगरंतो ।
रोमावलि वलि अंगि दिखावे ।
पिउ पिपालि रेवा व्व नावे ।
रमनाधाम निरुपम सोहे ।
किंकिणि रण-झंगत मन मोहे ॥'[1]

राहुल जी ने 'हिन्दी काव्य-धारा' में 'अज्ञात कवि या वृन्द कवि' के नाम से दो छन्द प्रस्तुत किए हैं । इन उभय छन्दों में रूपात्मक प्रशस्ति का भाव प्रगाढ़ रूप से विद्यमान है । कृष्ण की छवि की झाँकी प्रस्तुत करते हुए कवि लिखता है कि –

'अरे, रे वाहहि कान्ह नाव,
छोडिडगमग कुगति न देहिं ।
त इहि नदिहि संतार देइ, जो चाहि सो लेहि ॥ 9 ॥
परिणत शशिधर वन्दन, विमल कमल दल नयनं ।
विहित असुर कुल दलनं, प्रणमहु श्री मधु मथनं ॥'[2]

सौन्दर्य का निरूपण करते हुए 'जम्बूसामि रास' के प्रणेता ने जहाँ एक ओर अपने सौन्दर्य-बोध का कीर्तिमान स्थापित किया है, वहीं उसमें अनायास ही रूपात्मक प्रशस्ति के भाव का आगम भी हो गया है –

'नासिरिउ सेण्णु पयडंत जोइ मरुडिट्ट्य पोट्टट्टाल जोइ ।
रहोहिय रोहिय समर खेत्तु तं पेक्खवि धाइउ सबलु सत्तु ।

1- भविसयत्त कहा : पृष्ठ 32-33.
2- हिन्दी काव्य-धारा : पृष्ठ 461..

राउलहो मज्झे वुज्जइ सुवीरु सहुं थयरहिं जंबु कुमारु वीरु ।
एतहिं लगाई किय कलयलाइं विण्णि वि विज्जाहर नर बुलाइं ।
कंवाह्य -कलह्य-संदणाइं बहुपुर बहुनयणाणंदणाइं ।
मपकोंदिय - चोस्य - गयघडइं उन्वेढ़्य -पेल्लिय -मुहवडाइं ।
मुहसाह्यि -दाह्यि -ह्यवराइं रणरंगिय -वग्गिय -मच्छराइं ।
दप्पहरण -पहरण -धिरकराइं उग्गमिय -भामिय -असिवराइं ।
गुणगाह्यि -कड्यि -धणुहराइं रुद्धोह्यगमिल्लिय छराइं ।
उद्दण्ड धाम रउ मरलेत धउ धिध्दियदइं भाए अवहीलिए ।
निअराधिम्मियए निव्विण्णियए नीसाहु वहुब्बु धरिल्लिए ॥ 4 ॥'[1]

यह बताने की आवश्यकता नहीं कि जैन काव्य में पुराण साहित्य के बाद चरित काव्यों की महत्ता विशेष उल्लेखनीय है । जहाँ तक जैन प्रबन्ध साहित्य का सम्बन्ध है, प्रायः वह सभी प्रकार से धार्मिक ही है । ब्राह्मण धर्म की भाँति जैनियों ने भी अपने पुराणों की रचना की है और राम, कृष्ण, पाण्डवों आदि की कथाओं को अपनी जैन मान्यताओं के अनुरूप ढाला है ।[2] इन सभी प्रकार की कृतियों में पाई जाने वाली भावपरम्परा में दैवी कोटि की प्रशस्ति के साथ लोक स्तरीय प्रशस्ति भावना का सहज उच्छलन पाया जाता है । रूपात्मक प्रशस्ति में प्रायः राज परिवार की महिलाओं, सामन्तनियों के ही रूप की चर्चा हुई है तथा दैवी कोटि की रूपात्मक [illegible] प्रशस्ति में देवी-देवों के रूप की प्रशंसा का विधान किया गया है । किन्तु रूपात्मक प्रशस्ति का स्वर अपेक्षाकृत मन्द एवं विरल ही पाया जाता है ।

वीरता मूलक प्रशस्ति :-
==============

यद्यपि जैन काव्य लोकैषणा से उतना लगाव नहीं रखता जितना धर्मैषणा से । फिर भी राज्याश्रित कवियों ने अपने आश्रयदाताओं के युद्ध विषयक वर्चस्व को विभाषित करने के मोह में जैन कवियों ने वीरता मूलक प्रशस्ति भाव से पूरित अनेक छन्दों की रचना की है । यह वीरता मूलक प्रशस्ति पुराण, चरित,

---

1- जम्बूसामि चरिउ : संधि-6 ; पृष्ठ - 118.
2- हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास : पृष्ठ - 333.

कथा और स्फुट काव्यों में समान रूप से सुलभ है । आयातित चरित्रों की वीरता का बखान प्रायः युध्द स्थल में ही करते समय सार्थकता की अनुभूति होती है । यह सन्तोष की बात है कि जैन कवियों द्वारा धार्मिक दृष्टि से लिखे गए रचनाओं में भी युयुत्सा भाव का विकास पाया जाता है । स्वयम्भू ने अपने 'स्वयम्भू रामायण' में युध्द भूमि का वर्णन करते हुए सामन्तों की युयुत्स-भावना की मुक्त कण्ठ से समाराधना की है । यह उल्लेखनीय है कि तुलसी के ही समान स्वयम्भू भी राघवेन्द्र राम के पौरुष एवं वीरता का विवरण देने में बहुत ही कुशल है :-

'पराबले दीख राघव वीर । रवि रण लग्गेहि उर सन्नाह निबध्दउ ।
सो राघव प्रहरण हत्थाऊ । दनुपति निर्दलन समत्थऊ ।
दीरथ मेअल गोध्दंताऊ । चंदन कर्दन में सेयंताऊ ।
विहीहिउ मनहर कान्तावों । धृत माया सुग्रीवे तावों ।
रण-रभसेहिं धुसित गात्राए । आवलिय वेयावयाए ।
आच्छारेउ गुणी-जुगलाए । पंचिणि - हलंतअद - मुवराए ।
कंकण -निबध्द -करकमलाए । दिव्वोपु -न्नत -वक्षतलाए ।
कुंडल -मंडित -गंडत्ताए । चूड़ामणि -मुंजित -भालाए ।
भाहुर -पुलकाकुल -वदनाए । रक्तोत्पल -सन्निभ - नयनाए ।
जो सेन-सनध्दा -दीजाए । सो लक्ष्मणेहुं आहुआए ।'[1]

स्वयम्भू ने चन्द जैसे वीर कवियों के समान युध्द के जीवन्त चित्र प्रस्तुत किए हैं । महाकवि की प्रतिभा से मण्डित महाकवि स्वयम्भू की वाणी ने समकालीन जीवन की जाज्वल्यमान अनुभूती समस्याओं के वांछित समाधान प्रस्तुत किए हैं । तत्कालीन जीवन का परिवेश अपनी तनावपूर्ण स्थिति में चरित नायकों के युयुत्सा भाव के लिए एक चुनौती बना हुआ था । स्वयम्भू ने इसीलिए अपनी काव्य सृष्टि में युध्द के जीवन्त चित्र प्रस्तुत करते हुए वीरता मूलक प्रशस्ति का स्वर अनुगुंजित किया है । मेघवाहन के युध्द का प्रसंग प्रस्तुत करते हुए वे लिखते हैं —

'पहेइ मेघवान महिय - प्रहरणा निर्गतउ तुरंता ।
जनु युग-क्षय शनिश्चर, मरिय-मत्सर अधर -विसुरंता' ।

1- स्वयम्भू रामायण : 60/1-

सोउ प्रधायउ रथवर चडियउ । जनु केसरि - किशोर-किशोर नीबड्डियउ ।
संचलतेहं तोयदवाहने । तूर्यहिं हयहिं अशेषइ साधने ।
सन्नाहंति कोइ रजनीचर । वरतूणीर - वाण - धनु - वर - कर ।
कोई तोर वय-खड्ग - दृसल - हत्था । कोई गुरहिं अव्नामिय मत्था ।
कोई चडिय दिनाइनल तुरंगेहिं । कोई रसंत मत्त - मातंगेहिं ।
कोई रथहिं कोई शिविका-यानेहिं । कोई बैठे प्रवर - विमानेहिं ।
पूछेउ निजय - सारथी, अहो महारथी ।
दृढे जाई जाई, कहु केत्तियई ।
अर्धेइ रणइ समर्थे, रायहिं चडावियई ।'[1]

स्वयम्भू ने रामायण के अतिरिक्त 'रिट्ठणेमि चरिउ' या 'हरिवंश पुराण' की भी रचना की थी । इस काव्य की जैन पुराण साहित्य में बड़ी महिमा है । वीरता एवं युद्ध के विचार से प्रायः सभी समीक्षक इसका नाम प्रथम कोटि में रेखांकित करते हैं । इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना तथा डा० हीरालाल जैन जबलपुर के पास हैं । इसमें कुल 112 सन्धियाँ हैं । 93 सन्धियाँ स्वयम्भू रचित हैं, शेष उनके पुत्र त्रिभुवन आदि द्वारा रचित हैं । इस ग्रन्थ में चार काण्ड हैं - यादव, कुरु, युद्ध और उत्तर काण्ड ।[2]

जैन चरित काव्यों में वीर कवि विरचित 'जम्बूसामि चरिउ' के अन्तर्गत भी वीरता मूलक प्रशस्ति के अनेक एवं अथोर उदाहरण उपलब्ध हैं । नारी की वीरता का बखान करते हुए वीर कवि कहते हैं -

'का टिकंत रदिहइ कंत हो जुज्झन्तयहो हत्थि मणिकंत हो ।
कोइ नमण्णमि रखु जिम्हलइ अरि करि दन्त घडिउ पल उल्लउ ।
अक्खइ कांदिदंत भत्तार हो क्य किणिय हो न सोह इह हार हो ।
अणहि सिक्ख जग यह निम्मल सई क्य कुंभि कुंभ मुत्ताहल ।
वीरलइ कविवक्खण गय भेद वी अवसरु अज्जु समिरिणदेव हो ।।'[3]

1- स्वयम्भू रामायण : 53/4-5.
2- अपभ्रंश भाषा और साहित्य : संस्करण - 1 : पृष्ठ 113-114.
3- जम्बूसामि चरिउ : सन्धि - 6 : छन्द सं0 - 3.

युद्ध का जीवन्त चित्र देखना हो तो स्वयम्भू की युद्ध-वर्णन कला का अवलोकन कीजिए । राम-रावण युद्ध का प्रसंग जहाँ एक ओर अपनी ऐतिहासिक विरासत के लिए ख्यात है वहीं जैन काव्य की वीरता मूलक प्रशस्ति भावना का वर्चस्व विस्तारित करने के विचार से इस प्रकरण को स्वयम्भू ने और भी मूल्यवान तथा विचारणीय बना दिया है :-

'सो जण-मण-णयण याहि रावणो, पर-णरवर हरिणाइ रावणो ।
युद्धस्थाणि-थर-थावणो, भड-थड कडमद्दण करावणो ।
दुज्जण-जण-मण-जज्जरावणो, कहिं वर दुध्य एवं कप्परावणो ।
धणय-पुरन्दर-थरहरावणो, सरणाइय भय परिह रावणो ।
दाणविन्द-दुद्दम-डरावणो, भमर मणोहर वहुअ रावणो ।
दाण महाडयणो दुरावणो, णिसुणिउ जमं जम्पन्त रावणो ।
भणइ विहीसणु दुव्वयणु, वयण पियाइं दसाणण केरउ ।
मरण-कारे आरुच्छीजए, सव्वहो होइ चित्त विवरेरउ ॥'[1]

इसी प्रकार राम-रावण युद्ध के माध्यम से उभय पक्षीय वीरों की वीरता का रसात्मक एवं लोम-हर्षक चित्र कवि ने 'पंचहत्तरीमो सन्धि' के अन्तर्गत भी खींचा है जो जैन काव्य की प्रशस्ति-परम्परा के लिए वीरता मूलक वर्चस्व के विचार से महनीय सामग्री के रूप में स्वीकृत किया जा सकता है ।[2] 'भारतेश्वर बाहुबलि घोर रास' में भारतेश्वर एवं बाहुबलि नामक दो भाइयों के बीच उत्पन्न राज्य प्राप्ति के संघर्ष को काव्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है । कवि की भाव-सम्पदा के बीच यत्र-तत्र आने वाले स्थल जैन काव्य की वीरता मूलक प्रशस्ति की भाव-धारा को गाम्भीर्य दान करते रहे हैं । इस दृष्टि से 'भारतेश्वर बाहुबलि घोर रास' की कुछ पंक्तियों को भी उद्धृत कर देना विषय की स्पष्टता के विचार से समीचीन प्रतीत होता है -

'उतरु ताव न देइ बाहुबलि भरहेतरह ।
रणि हरिउउ ताव भरहेसरु धरिआइयउ ॥ 41 ॥

1- पउम् चरिउ : भाग 1: (सम्पादक हरिवल्लभ चुन्नीलाल भयाणी) : पृ0-2.
2- वही : छन्द सं0 1 से 10 तक : पृष्ठ.151.

णइ भरिहेसरि राइं रिसह जिणसरु पूछियउं ।
इ बाहुबलि भाइं सामिय काइं हराविउं ॥ 42 ॥
तइ महुरक्खर वाणि (य) रिसह नाइ पख्वज्जइ ।
कारण अवरु भजाणि (अ) पुर्व्वकियं परि परिणामइ ॥ 43 ॥
पंचभूत अम्हि आसि (अ) वयरसेण तित्थं करह ।
राउ करिवि तहिं पासि (अ) तपकिउ अम्हि निम्मलउ ॥ 44 ॥'[1]

भारतेश्वर एवं बाहुबलि के पराक्रम एवं पौरुष का यह गान उनकी वीरता की विरुदावली का सुन्दर वह स्वरूप है जिसका आस्फोट वीरगाथाओं में प्रमुख विषय के रूप में ही हुआ है । पुष्पदन्त युद्ध-भूमि का वर्णन करते हुए कहते हैं कि राम की जयकार के शब्दों के बीच और समूह कटकि के साथ निकल पड़े । योद्धा क्रोधित होकर प्रहार करने लगे, दसों दिशाओं में वीरों के परिधान एवं अस्त्र-शस्त्र झलक रहे थे । राम की सेना के घोर प्रहार से प्रतिपक्ष संत्रस्त हो उठा -

'जयभे रामालिंगन-लुअहं । एक-एव प्रहरंतहं द्धद्धहं ।
आहे संघटने उद्धेउं हुलवइ । वच्छकुतं शीपे उशोभितन्दह ।
दसह दिसाणइं तौहि प्राधिपाएं । पक्खर - धमरं ब्रहं ।
सो प्रतिपक्ष-प्रहर-भय अत्तउ । महुमय-बल दसदिसिपया ॥'[2]

वीरता की भावना से प्रभावित कवि पुष्पदन्त ने इसी प्रकार का पौरुषेय चित्र 'कालिय-दमन' प्रसंग के अन्तर्गत प्रस्तुत किया है । कृष्ण ने किस साहस और किस युद्ध कौशल के साथ भयंकर कालिय का मर्दन किया, इसका चित्रांकन करते हुए कवि पुष्पदन्त लिखते हैं -

'सित दाढा विज्जुलियहिं फुरंत । चल-यम-जोभ- विषलवमुचंत ।
सिरि समुइं फणग्गलि रत्न नख । पसरेउं जमहंकार घात दक्ष ।
जनुदंसधान सर गोहि मुक्क । आविगहिं कृष्णाएं पास ढुक्क ।
फणमुखवन्त चल धुद्ध लोल । जनु तिमिरहं मिलियो तिमिर लोक ॥'[3]

1- भारतेश्वर बाहुबलि घोर रास : छन्द सं0 41-44.
2- उत्तर पुराण : पृष्ठ 108.
3- हिन्दी काव्य - धारा : पृष्ठ - 229.

गोवर्द्धन धारण का प्रकरण तो इससे भी अधिक तीखे रूप में समुपस्थित किया गया है । उदाहरणार्थ –

'जल गले थल मले । दरि भरे, सरि सरे ।
तड़ तड़े तड़ि तड़े । गिरि फुट्टे शिखि नटे ॥
×× ×× ×× ××
गोवर्धन परीहिं गो-गोपिणि भारइव-जीयण ।
गिरि गोवर्धनउ, गोवर्धनेहिं उंचाइयउ ॥'[1]

रास एवं पुराण काव्य की वीरता मूलक प्रशस्ति की यह भाव-धारा जैन कथा काव्यों में समानान्तर रूप से प्रवहमान है । हाँ, यह बात अलग है कि उसमें इस भाव की व्यापकता एवं उसका प्रसार निश्चित रूप से उतना नहीं है । फिर भी 'धनपाल' जैसे जैन कवियों ने अपनी कृतियों में वीरता-मूलक प्रशस्ति भाव धारा की परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रखने का निरन्तर सफल प्रयास किया है । 'भविसयत्त कहा' में इस भाव के दर्शन अपनी समग्रता में होता है । युद्ध का चित्र 'भविसयत्त कहा' में भी आया है । जिसका चित्रण करते हुए धनपाल लिखते हैं –

'प्रथमउं प्रवर्तउ संग्राम साल । परिभमिय विभम मंडन कराल ।
भट-ठट आधा-परिहोइजाई । पायक्क ही पसरन होइ ताईं ।
सो माणिक्कु वयन सुनीय तेहिं । अप्फालिउं नर-वर्धित भुजेहिं ।
दुट्टें सम्माने योध जाई । पायक्क ही प्रसर न होइ ताईं ॥'[2]

जैन काव्य में चरित काव्यों की परम्परा में जिनेश्वर, श्रावकों, मुनियों शलाका पुरुषों की चरितावली का वर्णन-बखान एक बलीयसी प्रवृत्ति रही है । ये प्रतीत चरित्र अपनी साधना, संयम वृत्ति एवं वीरता के कारण ही समकालीन सम-समाज सुख्यात रहे हैं । मुनि कनकामर कृत 'करकंड चरिउ' इसी प्रकार की भाव-सम्पदा से भूषित काव्य है, जिसमें करकंड के जीवन से सम्बद्ध घटनाओं का विधिवत् एवं काव्य सम्मत ढंग से निरूपण किया गया है । 'दिग्विजय-वर्णन' के अन्तर्गत कवि मुनि

1- हिन्दी काव्य-धारा : पृष्ठ-227.
2- भविसयत्त कहा : पृष्ठ - 102.

कन कामर ने वीरता मूलक प्रशस्ति को मुखरित किया है –

'करकंडिहि साधिउ महि सकल । परि पुच्छिउं मतिवर विमल मति ।
भणु मयचक्क मतिवर काउं निश्चय । जो आजउ दुष्टउ ननि नवइ ।
सो मतिवर प्रमाणे देव देव । तुहुं महि चल सकलहुं करे सेव ।
पर द्रविड़ देशे नृप अहे धृष्ट । सो नमे न काहुहिं हृदय दुष्ट ।
श्री, चोल, पाण्ड्य, नामिन, चेर । न करे तुहारी देव केरें ।
सुनि देहु सो चंपाधिपेहिं । सप्रेषेउं दूतहिं तहं खणेहिं ॥'[1]

करकंड ने सकल पृथ्वी को नियन्त्रित कर रखा है, वे दुष्टों-शत्रुओं का उच्छेदन करने में समर्थ हैं । उन्हें मतिमान लोग देवों का देव मानते हैं । करकंड ने श्री, चोल, चेदि, पाण्ड्य आदि राजाओं को पराभूत कर रखा है । द्रविड़ आदि देशों को उन्होंने आधगत कर समस्त दिशाओं को जीत लिया है । इसी भाव को भूमि पर खड़े होकर करकंड चरिउ कार कनकामर ने युद्ध-भूमि का जीवन्त चित्र प्रस्तुत करते हुए लिखा है –

'सो सुनि वचन चंपाधिराज । सन्नाहिं तो पुरि बद्ध - राग ।
तमे तहं दन्तीपुर नृपेहिं । चंपाध्य मेदिनि मंदरेहिं ।
निर्-नाथिय नरिजन-जीवितेहि । उद्दालिय दन्तिदिशाराज रणेहिं ।
नभ छायउ धलियउ रविपदेहिं । लघु दीन प्रयाणउ क्रुद्ध रहिं ।
x x   x x   x x   x x   x x
गात्राइं टूटंति । मुंडाइं फुट्टंति । रुण्डाइं धावंति । अरि-थान पावंति ।
अन्त्राइं गोमंति । रुधिरेहिं अप्पंति । हड्डाइं मोडंति । ग्रोवाइं तोडंति ॥'[2]

कवि वृन्द जिन्हें राहुल सांकृत्यायन अज्ञात कवि के रूप में स्वीकारते हैं, ने सामन्त समाज के जीवन से सम्बद्ध अनेक चित्र प्रस्तुत किए हैं । उनकी स्फुट कविताओं में विभिन्न देवताओं की स्तुतियों के साथ ही साथ युद्ध का वर्णन भी प्राप्त होता है । युद्ध-वर्णन प्रसंग के अन्तर्गत वृन्द कवि ने जो भाव व्यंजित किए हैं उनके माध्यम से

1- करकंड चरिउ : पृष्ठ - 35.
2- करकंड चरिउ : पृष्ठ 28 - 31.

वीरात्मक प्रशस्ति का सूत्र ही तना-बुना गया है –

'अहि ललै महि चलै गिरि बसै हर खलै,
शशि घुमै अमिय वमैफुसल जोइ उटठए ।
पुनि धंसै पुनि खसै पुनि ललै पुनि घुमै,
पुनि वर्म जोवित्ता विविध परि समर दुष्टए ॥'।60॥[1]

सच बात तो यह है कि जैनियों द्वारा लिखे गए साधनात्मक अथवा धर्म प्रधान काव्य में पाई जाने वाली वीरता मूलक प्रशस्ति लौकिक क्रिया-कलापों में ही देखी जाती है । जैन कवियों के द्वारा उनकी कृतियों में प्रतिष्ठित चरित नायकों के वीरता मूलक कार्य दो वर्ग हैं । इसी उभय वर्ग के समानान्तर जैन काव्य की वीरता मूलक प्रशस्ति के दो रूप सामने आए हैं । कवियों ने विष्णु, ब्रह्मा, महेश, राम तथा कृष्ण के सम्बन्धित वीरता के जो प्रसंग प्रस्तुत किए हैं, उसे हम चाहें तो दैवी कोटि की वीरात्मक प्रशस्ति कह सकते हैं । किन्तु 'भारतेश्वर बाहुबलि घोर रास' जैसे काव्यों में पाई जाने वाली प्रशस्ति सम्पूर्ण रूप से वीरता मूलक लौकिक प्रशस्ति है । फिर भी ऐसे उदाहरण जिनमें लौकिक चरित्रों की वीरता की व्यंजना है, अधिक प्रभावी और स्वाभाविक प्रतीत होते हैं । जैन काव्य में वीरता मूलक प्रशस्ति का प्रधान स्वर लोक सापेक्ष है । पुष्पदन्त और स्वयम्भू जैसे महा कवियों ने अपने महाकाव्यों में इसी वीरता मूलक लौकिक प्रशस्ति को गाढ़े रंग में प्रस्तुत किया है । कवि पुष्पदन्त ने युद्ध का वर्णन अत्यन्त विशद एवं सजीव रूप में किया है । वीरता मूलक ऐसी प्रशस्तियों के लिखने का बहुत कुछ कारण परम्परा जन्य था तथा कुछ तत्कालीन युद्ध की प्रवृत्ति की प्रेरणा भी थी । राष्ट्रकूट जैसे राज्य प्रायः युद्ध में ही फंसे रहे । पुष्पदन्त ने वीरता मूलक प्रशस्ति लिखने में कलम तोड़ दी है । भरत की प्रचण्ड सेना षट् खण्ड पृथ्वी की विजय करने जा रही है । उसके आगे भेरी, तूर्य आदि बज रहे हैं । इस विराट वाहिनी का प्रयाण देखकर देवता भयातुर हो उठे हैं और उनके कान बाधित हो रहे हैं । असुर, नाग तथा पाताल वासी तक कम्पित हो रहे हैं । गिरि, महीतल टूट-फूट रहे हैं । सरिताओं का जल भी आन्दोलित हो रहा है । रवि-चन्द्र तक विचलित हो रहे हैं :-

---

1- हिन्दी काव्य धारा : पृष्ठ - 457.

'भुय दंड चंड विक्कम भयण, कब्बंड मंड लावणि करुण ।
गंभीरतूर लच्छइं हयाइं, पुप्फेयइं रच्छइं हयभयागुद्धं ।
कयसमरं अमरइं अरहरंति, गलइं सीलइं अहिहु जन्ति ।
अहुरिंदइं णाइं दइं पियाइं, पायालइं विउलइं कंपियाइं ।
हुटटइं फुट्टइं गिरिमहियलाइं, झलझलियइं बलियइं सरिजलाइं ।
थिर भावइं देवइं जायसकं, अपेक्खिय होक्खिय रवि ससंक ।'[1]

लक्ष्मण-बालि के युद्ध में घोर तुमुल युद्ध करते हुए भिड़ते हैं, सम्पूर्ण गगन में बाण आच्छादित हो जाते हैं, घावों से विगलित रक्त द्वारा भूमि लोहित वर्ण की हो जाती है । रथ चूर-चूर होते हैं, ध्वजाएं फटती हैं, हाथियों के दृढ़ कवच छिन्न-भिन्न होते हैं, भट भूमि पर गिरते हैं आदि । कवि की भाषा भीषण युद्ध के उत्तरोत्तर गतिमान होने का आभास देती है –

'अभिदट्टइं [illegible]ाइं, [illegible]पिडु णच्चलाइं ।
[illegible] [illegible]ाइं, [illegible]ाइं ।
मोडियरहाइं [illegible]याइं, [illegible]ाइं तारि[illegible]गदाइं ।
हुयदट्ठगुदाइं [illegible]याइं, [illegible]ाइं पा[illegible]भडाइं ।
अपेक्खिराइं [illegible]ाइं, हुयवरिवरराइं कंपियधराइं ।'[2]

राम-रावण के संग्राम का वर्णन बड़ी तन्मयता से किया है । भीषण युद्ध के कारण आकाश में उठती हुई धूलि का अलंकृत वर्णन करते हुए कवि कहता है कि – रथिक से रथिक, तुरग से तुरंग तथा हाथी से हाथी युद्ध कर रहे हैं । पैदल सैनिक दूसरों को भूमि पर गिरा रहे हैं । अश्वों के खुरों से आकाश में धूलि उड़ रही है, मानों पृथ्वी का प्राण हो । उसने भानु को ढँक लिया है । उस धूलि ने मानों चपलता से पतित होती हुई ध्वजा का निवारण कर लिया है । पाण्डुर तथा कपिलांग धूलि कैसी दिखाई देती है, मानों कमल के मकरन्द का कण है अथवा गज-कपोल से मद झर रहा है । दानशील के साथ कौन नहीं चलता है ? देखिए –

1- महापुराण : 12/2/9-14.
2- वहीं : 75/6/2-6.

'रहिसहिं रहिय तुरसहिं तुरय, रणि रुद्ध रंत हुरसहिं दुरय ।
पायालहिं वरपायाल खलिय, कम संचालेण धरित्ति दलिय ।
हरि खुर खणियावउर्ण भरंतु, उट्ठिउ धूलीरउ पय धरंतु ।
आयासचल्लिउणं पुरइ पाणु, संताविर तें विहिउ भाणु ।
चलवेग रुद्ध वसइ वरूण, णिवडंतु णिवारिउ णं धरुण ।
दीसइपंडुर कविलंगु केव, कत्तार पिंड मयरंदु जेव ।
सुप्पइ महथिप्पिरि करि कवोलि, भणु कोण विलग्गइ दाणसोलि ।'[1]

जैन काव्य को प्रायः सभी प्रमुख रचनाओं का अध्ययन-अनुशीलन करने के उपरान्त देखा यह गया कि इस काव्य में प्रशस्ति के जिन रूपों का निदर्शन पाया जाता है, उनमें प्रमुख हैं – प्रणति एवं शरणागत भाव, स्तुति एवं समाराधना, यश एवं प्रताप वर्णन, सम्पदा एवं वैभव वर्णन, स्नात्मक एवं वीरता मूलक प्रशस्ति। जैन काव्य की रचना करने वाले प्रायः सभी कवि जैन धर्म में दीक्षित थे। यह भी सत्य है कि इन कवियों ने अपने काव्य का जो विषय चुना है उसमें एक ओर मुनियों, श्रावकों, तीर्थंकरों तथा जिनेश्वर के विभिन्न अवतारों का चित्रांकन करते हुए एक सच्चे आस्थावान की भाव-धारा व्यंजित की गयी है। दूसरी ओर लौकिक नरेशों तथा नर चरित्रों का गान भी किया गया है। यह प्रवृत्ति अपनी परिस्थिति के अनुसार प्रायः सभी जैन कवियों ने दिखाई है। 'प्राकृत पैंगलम्' में प्राप्त कवि जज्जर के पदों में कलचुरि नरेश कर्ण का शौर्य यदि एक पद में कहा गया है तो दो पदों में संसार की नश्वरता का उल्लेख भी किया गया है। इस तथ्य से यह मानने में कोई संकोच नहीं कि धार्मिक वृत्ति की प्रधानता होते हुए भी जैन काव्य में लौकिक लगाव के प्रति संवेदना का भाव पुरजोर रूप में पाया जाता है। यही कारण है कि जज्जर जैसे कवियों ने कलचुरि नरेश कर्ण के दरबारी के रूप में काम किया। उनकी राजस्तुति सम्बन्धी कविताओं में राजा कर्ण के गुर्जर, महाराष्ट्र, सौड़, मालवा आदि की विजयों का ओजपूर्ण शैली में वर्णन किया गया है। इसमें परवर्ती चारण शैली का आदि रूप आश्चर्यजनक रूप में उपलब्ध होता है। उदाहरणार्थ –

'भअ गुज्जर कुंजर तेज मही, तुम जज्जर जोवण भञ्जण हो ।
जअ कुप्पिअ कण्ण णरिन्द वरा, रण को हरि को हर वज्जधरा ॥'[2]

1- महापुराण : 77/9/3 - 9.
2- प्राकृत पैंगलम् : पृष्ठ - 448.

यह प्रवृत्ति केवल बक्कर में ही पाई जाती हो ऐसा बात नहीं। स्वयम्भु, पुष्पदन्त, धनपाल, रामसिंह, कनकामर, आमभट्ट, लक्ष्मण आदि सभी कवियों की कृतियों में दैवी प्रशस्ति के साथ लौकिक प्रशस्ति के गान की प्रवृत्ति पाई जाती है। प्रशस्ति की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है और संस्कृत ग्रन्थों में ही उसके विविध आयामों का विशद् विवेचन सुलभ है। विद्वानों का मत कुछ ऐसा है कि वेदों में, ब्राह्मणों तथा उपनिषदों में प्रशस्ति का प्रारम्भिक रूप सुरक्षित है। किन्तु इसका व्यापक आलोट हिन्दी काव्य-धारा के सन्दर्भ में प्रथमतः जैन काव्य में ही पाया जाता है। जिसकी विवेचना सारांशतः ऊपर की जा चुकी है। यहाँ एक बात और कह कर हम इस अध्याय को समाप्त करेंगे कि जैन काव्य में कुछ स्थल ऐसे भी हैं जिनमें लौकिक और अलौकिक दोनों प्रकार की प्रशस्ति के भाव एक साथ साकार हो उठे हैं। उदाहरणार्थ –

'तो हसन्ती पयणा णन्दे, संचल्लनी णवचन्दे ॥ 1 ॥
सोपाणविरे कमण णिवालिउ, याचित्तेण चित्त संचालिउ ॥ 2 ॥
णिय मन्दिर हो, विणिग्गय जाणइ, णं हिमवन्तो गंग महाणइ ॥ 3 ॥
णं छन्द हो णिग्गय गयत्तो, णं सद्दहो णीसरिय विहत्ती ॥ 4 ॥
णायविलि सुपुरिस विमुक्की, णयरम्म णियणाणहों चुक्की ॥ 5 ॥
कुलसिय घाण कुवलमहन्ती, णंगय पर, भह, थड विहडन्ती ॥ 6 ॥
णेउर हार-डोर गुप्पन्ती, बहुतम्बोल पवि खुप्पन्ती ॥ 7 ॥
हेट्ठा-मुह, दमदामलुणिज्जेवि, अवणइ सुमित्ति आउच्छेवि ॥ 8 ॥'[1]

स्वयम्भु द्वारा चित्रित राम वल्लभा सीता का यह अनिंद्य लौकिक सौन्दर्य लोकोत्तर छवि का विधान करता है। सीता के ललित रूप में विलुलित होने वाली यह दिव्य छवि गाढ़ दे समक्ष स्थूल में सूक्ष्म सत्ता की सुमनोहरता को साकार करती है। इस साक्ष्य पर यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि जैन काव्य में प्रस्फुटित होने वाली प्रशस्ति भावना में लौकिक एवं अलौकिक दोनों धाराएँ मिश्र रूप में प्रवहमान हैं।

जैन काव्य की प्रशस्ति भावना में रत रहने वाले विद्वान श्री अगरचन्द

1- पउम चरिउ : भाग 2 : पृष्ठ - 17.

नाहटा एवं श्री ह0चु0 भयाणी ने विभिन्न जैन शास्त्र भण्डारों की प्रामाणिक सामग्री का एक संकलन प्रकाशित किया है । इसमें जहाँ वह तमाम सामग्री पाई जाती है जिसकी चर्चा हमने प्रसंगात वस्तु के विश्लेषण के बीच की है, वहाँ कुछ ऐसे कवि और उनकी कुछ ऐसी कृतियाँ भी सामने आई हैं जिन पर यहाँ विद्वानों का ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक है । प्रशस्ति भावना के विचार से इस संकलन में 'नयना सुन्दरि सन्धि,' 'केसी गोयम सन्धि,' 'आबू रास,' 'शान्तिनाथ देव रास,' 'नवकार रास,' 'धर्म चच्चरी,' ''चच्चरी,' 'दिषम सबरी भास,' 'सर्वजिन कलश,' 'युगादि देव कलश,' 'वीर जिन कलश,' 'महावीर कलश,' 'महावीर जन्माभिषेक,' 'प्रकीर्ण दोहा,' 'दंगड़' और 'नवकार फल स्तवन' शीर्षक से प्रस्तुत की गयी सामग्री में पर्याप्त बल एवं वर्चस्व विद्यमान है ।[1]

समस्त जैन काव्य की प्रशस्ति भावना की मीमांसा करने से स्पष्ट है कि इस काव्य में प्रशस्ति का स्तोत्र परक या स्तुतिमूलक स्वर ही अधिक प्रबल है । विद्वानों का विचार है कि आराध्य के गुणों की प्रशंसा करना स्तुति है । लोक में अतिशयोक्ति पूर्ण प्रशंसा को स्तुति कहते हैं किन्तु यह परिभाषा भगवान पर घटित नहीं होती । भगवान में अनन्त गुण हैं । उनमें से एक का वर्णन ही पाना ही असाध्य है, फिर अतिशयोक्ति कैसे हो सकती है ।[2] अन्त में मैं जैन सन्त समन्त भद्र के स्वर में अपना स्वर मिलाती हुई इस प्रसंग को समाप्त करती हूँ । उन्होंने कहा है –

'गुणास्तोकं सदुल्लंघ्य तद् बहुत्वा कथा स्तुतिः ।
आनन्त्यात्ते गुणावक्तुम शक्यास्त्वयि साक्थम् ॥'

–(आचार्य समन्त भद्रः स्वयम्भू स्तोत्र : सम्पादक पं0 युगल किशोर, वीर सेवा मन्दिर सरसव : सं0 2008 : पृ0 61)

अर्थात् थोड़े गुणों का उलंघन करके बहुत कहने वाली परिपाटी

1- विशेष ज्ञान के लिए देखिए – प्राचीन गुर्जर काव्य संचय
– सम्पादक – डा0 ह0चु0 भयाणी
श्री अगरचन्द नाहटा

2- डा0 प्रेम सागर जैन : जैन भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि : पृष्ठ -29.

भगवान जिनेन्द्र पर लागू नहीं होती, क्योंकि उनमें गुण बहुत है जिन्हें कह पाना सम्भव नहीं है । इसी भांति जैन काव्य की प्रशस्ति का समग्र स्वरूप दिखा पाने में इस शोध-प्रबन्ध के कुछेक पृष्ठ पर्याप्त नहीं हैं । इसे अलग से एक विषय के रूप में रखने पर ही सन्तोष पाना सम्भव है ।

******** 0 ********